ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

मार्च २०२०

Date of Printing = 05-03-20
प्रकाशन दिनांक= 05-03-20

वर्ष ४९ : अङ्क ५
दयानन्दाब्द : १९६
विक्रम-संवत् : फाल्गुन-चैत्र २०७६-७७
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,१२०-२१

संस्थापक : **स्व० ला० दीपचन्द आर्य**
प्रकाशक व सम्पादक : **धर्मपाल आर्य**
सह सम्पादक : **ओमप्रकाश शास्त्री**
व्यवस्थापक : **विवेक गुप्ता**

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

कुल पृष्ठ २८
एक प्रति १५.०० रु०

वार्षिक शुल्क १५०) रुपये
पंचवर्षीय शुल्क ५००) रुपये
आजीवन शुल्क ११००) रुपये
विदेश में ५०००) रुपये

इस अंक में

- श्रद्धाञ्जलि २
- ईश्वर न्यायकारी और दयालु है २
- वेदोपदेश ३
- शिवरात्रि और मूलशंकर ४
- वेदों का अपौरुषेयत्व ७
- दो सनातन सत्ताएँ–शंका समाधान १०
- आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः १४
- दलितोद्धार की आड़ में (४) २२

विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अतः किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण ▯ ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) ▯ ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

श्रद्धाञ्जलि

(आनन्द प्रकाश आर्य, जौरासी, पानीपत मो० ९२१५७००७१०)

जो आता है वह जाता ही है कभी न कभी जमाने से।
हाँ, आर्य समाज को क्षति हुई है श्री नन्दकिशोर के जाने से॥
विद्यावाचस्पति मनस्वी कर एम.ए. पास इम्तिहान गया,
नारद की तरह भ्रमण करता वो जबरदस्त इन्सान गया,
स्वाध्यायशील विचारक चिन्तक वह अनुपम विद्वान् गया,
जीवन यात्रा कर पूरी वो आर्य समाज का हनुमान गया,
ऐसी निद्रा में जा सोया अब जगेगा नहीं जगाने से॥
हाँ, आर्य समाज को क्षति.....॥१॥

ऋषि दयानन्द का चेला बन पाखण्ड से किया किनारा था,
'आर्य समाज के इतिहास' लेखक को पूर्ण सहयोग तुम्हारा था,
सत्यकेतु जी को ला ला दी सामग्री ना थका कभी न हारा था,
'अनिता आर्य प्रकाशन' को दी प्रेरणा जिसको मन में धारा था,
'घूड़मल प्रकाशन' में प्रसिद्ध हो गये, आर्ष पुस्तकें छपवाने से॥
हाँ, आर्य समाज को क्षति.....॥२॥

कितनी ही संस्थाओं में योगदान था नहीं बैठते थे खाली,
कोई समाज ऐसा ना होगा जहाँ आपने हाजिरी न डाली,
नेपाल में गुरुकुल खोल दिया वेद उपनिषद् की छा गई लाली,
मराठी, नेपाली साहित्य छपवा फिर 'गौरव ग्रन्थामाला' लिख डाली,
जो धुन लग गई उसमें रम गये फिर हटे ही नहीं हटाने से॥
हाँ, आर्य समाज को क्षति.....॥३॥

ऋषि ऋण उतारते रहे हमेशा फिर बीमारी ने आन सताया था,
पटना से आये तो स्वामी ऋतस्पति ने इन्हें इन्दौर दिखाया था,
आर्य समाजों और बन्धुओं से भी काफी सहयोग दिलाया था,
ठीक हुए तो गुरुकुल होशंगाबाद में आराम के लिए बुलाया था,
स्वास्थ्य सुधार लगा था होने यहाँ परहेज से पीने खाने से॥
हाँ, आर्य समाज को क्षति.....॥४॥

ऋतस्पति जी व सत्यसिन्धु ने सेवा में कसर उठाई ना,
ब्रह्मचारियों ने की सेवा इतनी कोई करे बहन और भाई ना,
पर शास्त्र कहते नियम ईश्वर का मृत्यु की कोई दवाई ना,
17 फरवरी सोमवार चले गये कोई अगली तारीख आई ना,
सब रह गये हाथों को मलते मृत्यु टलती नहीं टलाने से॥
हाँ, आर्य समाज को क्षति.....॥५॥

18 को गुरुकुल के अन्दर रख, मुख दर्शन के लिए खोला,
अन्तिम दर्शन कर आर्यों ने, मुख से ओ३म् ओ३म् बोला,
'आनन्द' अभागा नहीं जा पाया दिल में उठता रहा शोला,
19 को वहीं तैयार चिता पर रख दिया नाशवान चोला,
रहेंगे सदा स्मृतियों में हमारी भूलेंगे नहीं भुलाने से॥
हाँ, आर्य समाज को क्षति.....॥६॥

ईश्वर न्यायकारी और दयालु है

ईश्वर की न्यायकारिता और दयालुता आज तुम्हें दिखलाता हूँ।
बड़ौली गाँव जिला बागपत जहाँ यदा-कदा मैं जाता हूँ॥१॥
इसी गाँव में भट्टा किनारे, घायल पड़ी थी एक गौ माता।
आते-जाते लोग बहुत से, पर दया भाव न आता॥२॥
वह गौ माता निज पैर दर्द से, थी दिन-रात छटपटाती।
मूक पशु थी इस कारण से, थोड़ा भी न कुछ कह पाती॥३॥
श्री विनय सहरावत कोच की उस पर गई दृष्टि अकस्मात्।
हृदय में फूटा अकुंरण दया का खोजने लगे किसी का साथ॥४॥
तभी सन्नी चौहान रंगीला का उनको आया झट ध्यान।
दु:खी गाय का फोन पर, करने लगे बखान॥५॥
आनन-फानन में सन्नी ने, पशु चिकित्साधिकारी को बताया।
निज दल के सहित चिकित्साधिकारी, वहाँ मौके पर था आया॥६॥
अत्यन्त सड़ रहे पैर काट कर, किया कष्ट से गौमाता को पृथक्।
परोपकारिता का गुण अपनाकर किया पूर्ण निज हक॥७॥
जिस पाप कर्म के कारण गाय भोग रही थी संताप।
घूमा ईश्वर का दया चक्र, खुल गये मार्ग उपचार के अपने आप॥८॥
ठीक कहते हैं विद्वद्गुण, ईश्वर है दयालु और न्यायकारी।
भूलो न कभी ईश्वर को, उसकी दण्ड व्यवस्था है भारी॥९॥
श्री विनय सहरावत सन्नी चिकित्साधिकारी हैं साधुवाद के पात्र।
जिनके उत्तम विचार और कर्म से, स्वस्थ हुआ गौ माता का गात्र॥१०॥
इसके बदले ईश्वर की रहेगी अवश्य उन पर सदा कृपा।
सुख शान्ति समृद्धि का होगा अनुभव जीवन में कई दफा॥११॥
कहे 'विवेकानन्द शास्त्री' यह घटना घटी है सच्ची।
दया के गुण को करना धारण, यह गुणवत्ता से सच्ची॥१२

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। ▯ महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश- नकिर्देवा मिनीमसि नकिरा योपयामसि मन्त्रश्रुत्यं चरामसि। पक्षेभिरपिकक्षेभिरत्राभि सं रभामहे॥ (ऋ० १०/१३४/७)

शब्दार्थः- हे **देवाः**=दिव्यगुणसम्पन्न महात्माओ! **नकिः**=न तो हम **मिनीमसि**=हिंसा करते हैं-घातपात करते हैं और **नकिः**=न ही **आ+योपयामसि**=फूट डालते हैं, वरन् **मन्त्र-श्रुत्यम्**=मन्त्र के श्रवणानुसार **चरामसि**=आचरण करते हैं-चलते हैं, **कक्षेभिः**=तिनकों के समान तुच्छ **पक्षेभिः**=साथियों के साथ **अपि**=भी **सम्**=एक होकर, एकमत होकर, मिलकर, **अत्र**=इस जगत् में **अभिरभामहे**=वेगपूर्वक कार्य करते हैं।

व्याख्याः- वेद हिंसा, घातपात का अत्यन्त विरोधी है। साधारण जीवन में हिंसा वेद को अभिमत नहीं है। वास्तव में हिंसा प्रायः सम्पूर्ण दुर्गुणों की खान है। इसलिए ऋषियों ने यमों में अहिंसा को प्रथम स्थान दिया है। योगियों का सिद्धान्त है कि सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह-ये सभी अहिंसा को ही उज्ज्वल और परिष्कृत करने के लिए हैं।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। इसे अपनी जीवन-यात्रा चलाने के लिए समाज बनाकर रहना होता है। समाज-निर्माण का प्रयोजन मनुष्य का सर्वविध विकास है। उसके लिए कुछ नियम, विधान बनाने पड़ते हैं, ताकि समाज का संचालन भली-भाँति होता रहे। **'विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः'** [मनुष्य के मन की वृत्तियाँ विचित्र होती हैं] के अनुसार कई कुटिल-प्रकृति-मनुष्य अपनी कुटिलता के कारण समाज में गड़बड़ उत्पन्न कर देते हैं। उससे समाज में फूट पड़ जाती है। इस भेद के कारण समाज की शक्ति क्षीण हो जाती है। वैदिक लोग कहते हैं-

नकिर्देवा मिनीमसि नकिरा योपयामसि- न हम घातपात करते हैं और न ही फूट डालते हैं। ठीक है, निषिद्ध कर्मों से बचना निःसन्देह उत्तम है, किन्तु मनुष्य का हित तो विहित कर्मों में है, अतः कहा-

मन्त्रश्रुत्यं चरामसि-मन्त्र के श्रवणानुसार हम चलते हैं अर्थात् जैसा वेदमन्त्र में विहित है, मनुष्यमात्र को वैसा आचरण बनाना चाहिये। भगवान् ने मानव के कल्याण के लिए वेदवाणी का विधान किया है। वेद में मन्त्र को गुरु कहा गया है-

मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु [ऋ० १/१४७/४]-मन्त्र ही फिर गुरु होवे, अर्थात् जहाँ कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का बोध न हो, वहाँ मन्त्र की शरण लेनी चाहिए। मन्त्र का एक अर्थ विचार भी होता है अर्थात् बिना विचारे कुछ नहीं करना चाहिए। वेद की शिक्षा का एक छोटा-सा नमूना [बानगी, आदर्श, उदाहरण] इसी मन्त्र में दे दिया है-

पक्षेभिरपि कक्षेभिरत्राभि सं रभामहे-तिनकों के समान तुच्छ साथियों के साथ एक होकर हम वेगपूर्वक यहाँ कार्य करते हैं, अर्थात् किसी को भी घृणा या तुच्छता की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। तुच्छ-से-तुच्छ पदार्थ भी अपना उपयोग रखता है। समझदार मनुष्य उससे भी अपनी कार्यसिद्धि कर लेते हैं। संकेत से यह मन्त्र ऊँच-नीच भाव को समाज के लिए घातक मानकर उसे त्यागने की प्रेरणा कर रहा है।

साभार- स्वाध्याय सन्दोह

❑❑

शिवरात्रि और मूलशंकर

(धर्मपाल आर्य)

महर्षि दयानन्द सरस्वती 19वीं सदी के अद्वितीय सन्त थे; जिन्होंने भारतवर्ष को न केवल राजनीतिक दृष्टि से, अपितु आध्यात्मिक दृष्टि से भी समाज और राष्ट्र को अखण्ड व समृद्ध बनाने में अपना अभूतपूर्व योगदान दिया। ऐसा नहीं कि राष्ट्र निर्माण में अन्य महापुरुषों का योगदान नहीं था, उनका योगदान अपनी योग्यता और सामर्थ्यानुसार था। किसी का सामाजिक क्षेत्र में योगदान था, किसी का आध्यात्मिक क्षेत्र में योगदान था, किसी का राजनीतिक क्षेत्र में योगदान था, किसी का देश को स्वतन्त्र बनाने में योगदान था किन्तु महर्षि दयानन्द सरस्वती के योगदान से कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं था। क्या राजनीति का क्षेत्र, क्या सामाजिक क्षेत्र, क्या आध्यात्मिक क्षेत्र, क्या शिक्षा क्षेत्र, क्या धार्मिक क्षेत्र, क्या शास्त्रार्थ का क्षेत्र इन सबके पुनरुद्धार का पुनीत कार्य महर्षि ने अपने अथक प्रयासों से किया। वो बचपन का मूल शंकर निराकार ईश्वर के मूल को जिस दिन तलाशने निकला था, वो पावन दिन था महाशिवरात्रि का पर्व। महाशिवरात्रि के पर्व का महत्त्व पौराणिक जगत् के लिए अलग है और आर्य जगत् के लिए अलग है। आर्य जगत् के लिए तो इस पर्व की महत्ता इसलिए है कि मूल शंकर (स्वामी जी का बचपन का नाम) ने इसी दिन बोध प्राप्त किया था। उसी के परिणामस्वरूप मूल शंकर; मूल शंकर से शुद्ध चैतन्य तथा शुद्ध चैतन्य से महर्षि दयानन्द सरस्वती बने। असंख्यों महाशिवरात्रियाँ आयीं और गईं व भविष्य में भी असंख्यों महाशिवरात्रियाँ आएंगी और जाएंगी किन्तु वो शिवरात्रि कुछ खास थी। खास इसलिए कि उस शिवरात्रि ने इस दुनिया को जगत् का कल्याण करने वाला, वैदिक संस्कृति को स्थापित करने वाला, स्वतन्त्रता के सर्वप्रथम उद्घोषक, स्त्री व शूद्रों को वेद विद्या का अधिकार देने वाला, धर्म और कर्मकाण्ड से पाखण्ड को मिटाने वाला तथा समाज व राष्ट्र का पुनर्निमाण करने वाला एक अनुपम महापुरुष प्रदान किया। शिवरात्रि व बोधरात्रि पर आचार्य मेधाव्रत जी ने दयानन्द लहरी में बड़ा सटीक लिखा है:-

कियत्यो नो जाता जगति शिवरात्र्यो ननु पुरा।
कियद्भिर्नाकारि प्रार्थता शिवरात्रिव्रतविधिः।।
परं सा काऽप्यासीद् व्रतिवर जगन्मङ्गलकरी।
सवित्री ज्ञानानाममृतफलदात्री तव यतैः।।

अर्थात् कितनी ही शिवरात्रियाँ पहले आईं; कितनी शिवरात्रियों में उसके अनुष्ठान की विधि की गई; किन्तु हे ऋषिवर! जिस शिवरात्रि में तुम थे, वह शिवरात्रि न केवल अमृत के फल को देने वाली थी, अपितु हे ऋषिवर! वह शिवरात्रि जगत् का कल्याण करने वाली भी थी।

संस्कृति के चार अध्याय में रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं- "स्वामी जी से पहले यह हिन्दू समाज फुसफुसिया था।" उपरोक्त वाक्य दिनकर जी ने यूँ ही नहीं लिख दिया। उस वाक्य को लिखने के पीछे लेखक की मंशा को समझना कठिन नहीं है क्योंकि ऋषिवर के आने से पहले हिन्दू समाज ईसाइयों और मोहम्मदियों के अनुयायियों तथा इनके प्रमुखों से आए दिन अपमानित होता था। हिन्दुओं के ईश्वर के नाम पर कल्पित देवी-देवताओं पर कटाक्ष किया जाता था, भारत की भारतीयता का उपहास उड़ाया जाता था, राम और कृष्ण के चरित्र को पुराणों की आड़ लेकर उनके चरित्र को कलंकित किया जाता था और आर्यावर्त्तीय जीवनशैली का मजाक उड़ाया जाता था। आभार उस बोधरात्रि (शिवरात्रि) का जिसने न केवल उपरोक्त विडम्बनाओं से डटकर जूझने वाला अपितु उन सब पर विजय प्राप्त करने वाला विलक्षण व्यक्तित्त्व और मेधा के धनी मूल शंकर को महर्षि दयानन्द सरस्वती के रूप में भेजा।

मुझे यह लिखने में लेशमात्र भी संकोच नहीं है कि ऋषिवर दयानन्द जैसा विलक्षण प्रतिभा और आत्मिक, मानसिक व चारित्रिक शक्ति का धनी अब तक धराधाम पर पैदा नहीं हुआ, जिसने जीवन के हर पल को राष्ट्र में सत्यता की स्थापना के लिए, मानवता के उत्थान के लिए, सामञ्जस्य और सद्भाव के विस्तार के लिए, दीनों और दलितों के उद्धार के लिए, समाज के समग्र सुधार के लिए, वेदों के अनुसार "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" के ऋषियों, महर्षियों, योगियों और महापुरुषों के सपने को साकार करने के लिए, वेदों, शास्त्रों और उपनिषदों समेत ऋषियों के समस्त आर्षग्रन्थों के प्रचार-प्रसार के लिए और भारत की राजनीतिक परतन्त्रता को मिटाने के लिए अर्पित कर दिया। उस मूल शंकर ने शंकर (परमात्मा) के मूल को मठों में ढूंढ़ा परन्तु नहीं मिला, उस शंकर ने शंकर के मूल को मन्दिरों में ढूंढ़ा किन्तु नहीं मिला, उस मूल शंकर ने शंकर के मूल को मस्जिदों, चर्चों में ढूंढ़ा किन्तु नहीं मिला, उस मूल शंकर ने शंकर के मूल को पुराण और कुरान में ढूंढ़ा किन्तु नहीं मिला, उस मूल शंकर ने शंकर के मूल को बौद्ध, जैन, कबीर पन्थी और ईसाइयों के मत ग्रन्थों में ढूंढ़ा किन्तु नहीं मिला। यदि उस मूल शंकर को मूल मिला तो कहाँ मिला?

प्रबुद्ध पाठक गण! मूल शंकर को तो नहीं; हाँ महर्षि दयानन्द सरस्वती को अवश्यमेव वह शंकर मूल मिला; और आप जानते हैं कि वह मूल कहाँ मिला? वह मूल मिला वेदों में; वह मूल मिला दर्शनों में और वह शंकर का मूल मिला उपनिषदों में। महर्षि ने वेदों, दर्शनों और उपनिषदों के शंकर (भगवान्) को अपनी साधना और योग भक्ति द्वारा अनुभव किया कि जिस शंकर के कैलाश पर्वत पर रहने की बात पुराण ने की है, वह मिथ्या है क्योंकि उसका तो कोई आकार ही नहीं है। वेदों, दर्शनों और उपनिषदों का वह ईश्वर तो सर्वव्यापक है। उसकी कोई प्रतिमा नहीं है और न ही उसकी प्रतिमा बनाना संभव है। महर्षि ने उसी शंकर का उपदेश, उसी के उपासना का उपदेश और उसे अपनी आत्मा में अनुभव करने का उपदेश सारी दुनियाँ को दिया। धर्म के आधार पर होने वाले भेदभाव का आपने मुखर होकर विरोध करते हुए समाज को समरसता का सन्देश दिया।

"न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्य नाम महद्यशः..."

अर्थात् जिस ईश्वर का यश सृष्टि के कण-कण में समाया हुआ है उसकी न तो कोई प्रतिमा है और न ही बनाई जा सकती है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने जहाँ धर्म और ईश्वर के नाम पर समाज व राष्ट्र में व्याप्त पाखण्ड व भेदभाव को समूल नष्ट करने का भागीरथ प्रयास किया; वहीं ऋषिवर ने समाज व राष्ट्र में व्याप्त लैङ्गिक भेदभाव को, जाति आधारित भेदभाव को जड़ से उखाड़ने का अथक प्रयास किया; तभी तो आचार्य मेधाव्रत "दयानन्द लहरी" नामक स्वरचित काव्य पुस्तक में लिखते हैं:-

कियत्कष्टं सोढं मुनिवरसुधर्मोन्नतिकृते,
कियद्वारं धूर्तैः गरलमपि सम्भोजितमिह।
विसोढाः वाग्वाणाः प्रहरणमपि प्रापि दृषदाम्,
महात्मा धर्मार्थं न गणयति दुःखं न च सुखम्।

अर्थात् हे ऋषिवर! आपने धर्म के उन्नति के न जाने कितने कष्टों को सहन किया, न जाने कितनी बार अपने समाज व राष्ट्र के हित में नास्तिकों और पाखण्डियों के वाग्बाणों को सहन किया; किन्तु हे धुन के धनी! अखण्ड चरित्र और मनोबल के धनी! हे आत्मबलिन्! आप धन्य हैं क्योंकि इस प्रकार की असंख्यों आपत्तियों का धीरता व वीरता से सामना करते हुए राष्ट्र व समाज की सर्वांगीण उन्नति के लिए प्रयास करते हुए मानव निर्माण के पावन अभियान को प्रचारित-प्रसारित करते हुए गम्भीरता और निर्भीकता के साथ आगे बढ़ते रहे।

भर्तृहरि ने ठीक ही तो कहा है कि मनस्वी, धीर व वीर पुरुष अपने मार्ग में आने वाले संकटों की परवाह नहीं करते। मैं निःसंकोच कह सकता हूँ कि शिवरात्रि की सार्थकता शिवरात्रि से नहीं, अपितु शिवरात्रि की सार्थकता बोधरात्रि से है। शिव का असली बोध शिवरात्रि से नहीं, अपितु बोधरात्रि से संभव है और जीवन के कल्याण का

पावन सन्देश शिवरात्रि से नहीं, अपितु बोधरात्रि से मिलता है। मैं कह सकता हूँ कि सार्थकता शिवरात्रि की नहीं अपितु बोधरात्रि की है क्योंकि सत्य को और सच्चे शिव की तलाशने के अभियान का सूत्रपात इसी रात्रि को हुआ था।

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास की अनुभूमिका में लिखते हैं:- "जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विरुद्ध वाद न छूटेगा तब तक अन्योऽन्य को आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्या द्वेष छोड़कर सत्याऽसत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना कराना चाहें तो हमारे लिए यह बात असाध्य नहीं है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा एकमत में प्रवृत्त होने का उत्साह सब मनुष्यों के आत्माओं में प्रकाशित करे।" उपरोक्त कथन से सामाजिक भेदभाव, धार्मिक भेदभाव, राजनीतिक पराधीनता तथा आध्यात्मिकता में आए असंख्यों आडम्बरों, पाखण्डों और विरोधाभासों को दूर करने के महर्षि जी के आशय को सहजता से समझा जा सकता है। हे ऋषिवर! आपका सत्य ही लक्ष्य था, हे ऋषिवर! सत्य ही आपकी शक्ति थी, हे ऋषिवर! कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ही आपका सपना था, हे ऋषिवर! राष्ट्र व समाज की धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक पराधीनता ही आपकी सबसे बड़ा पीड़ा थी। हे ऋषिवर! आपको कोई लोभ लुभा न पाया, कोई संकट आपको आपके न्याय व सत्य पथ से डिगा न पाया, विरोधियों का कोई भी बल आपको दबा न पाया, हे असंख्यों मतमतान्तरों के असंख्य मतावलम्बियों को तर्कतीरों से भेदने और छेदने वाले ऋषिवर! पवित्र वेदों की पावन ज्ञान धारा को जन-जन के मन में बहाने वाले इस युग के ही नहीं अपितु युग-युग के भागीरथ हो। हे ऋषिवर! आपका वाक्चातुर्य, हे ऋषिवर! आपकी तार्किक शक्ति, हे ऋषिवर! आपकी शास्त्रार्थ क्षमता, हे ऋषिवर! सत्य मार्ग में आपकी दृढ़ता, हे ऋषिवर! आपका विलक्षण वैदुष्य, हे ऋषिवर! आपका नीति-नैपुण्य व आपका कर्मकौशल और हर विषय पर आपका व्यापक दृष्टिकोण समाज के लिए वरदान, राष्ट्र की सर्वाङ्गीण उन्नति के लिए मील का पत्थर साबित हुए हैं।

संभव है कि पाठकगण सोचेंगे कि मैं अपने इस लेख में मूल शंकर, शिवरात्रि, महर्षि दयानन्द सरस्वती और बोधरात्रि से आगे क्यों नहीं निकला, क्यों नहीं मैंने उनके माता-पिता का, क्यों नहीं मैंने उनके गुरुवर्य का, क्यों नहीं मैंने काशी और कलकत्ता के शास्त्रार्थों का, क्यों नहीं मैंने ऋषिवर के सहयोगी और श्रद्धालु नरेशों का उल्लेख किया? इसका विनम्रता के साथ पाठकों को कारण बताना चाहता हूँ और वो यह है कि इन सबका मूल तो आखिर मूल (शंकर) ही है। इस कारण मूल से आगे नहीं निकल पाया; आशा है कि पाठक मेरी और मेरी लेखनी की विवशता को समझेंगे।

❑❑

स्मृति शेष आचार्य नन्दकिशोर जी

आर्य जगत् में 'नारद' व 'हनुमान' के उपनाम से सुप्रसिद्ध, अनेक ग्रन्थों के लेखक, संपादक व प्रकाशक, स्वाध्याय-सत्संग प्रेमी, सरल हृदय, उदारमना, बालसम हँसमुख व्यक्तित्त्व के धनी, आर्य समाज व वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार व प्रसार के लिए जीवन समर्पित करने वाले हम सबके प्रिय आचार्य ब्रह्मचारी नन्दकिशोर जी 17 फरवरी 2020 को इस नश्वर शरीर को छोड़कर पञ्चतत्त्व में विलीन हो गये। निश्चय ही उनका जाना आर्यसमाज व वैदिक धर्म के लिए अपूरणीय क्षति है। वैदिक धर्म के प्रति उनका समर्पण सदैव स्मरणीय व अनुकरणीय है और आने वाली पीढ़ियाँ उनसे प्रेरणा लेती रहेंगी।

"दयानन्द सन्देश" परिवार की ओर से आर्यसमाज के सच्चे सपूत और मिशनरी को विनम्र श्रद्धाञ्जलि।

-दिनेश कुमार शास्त्री

वेदों का अपौरुषेयत्व

(उत्तरा नेरूर्कर, मो. ०९८४५०५८३१०)

महर्षि दयानन्द सरस्वती के घनघोर अनुयायी होने पर भी, एक बात को मानने में कठिनता होती है और वह है वेदों का अपौरुषेयत्व। यह संशय स्वाभाविक भी है। हमे प्रकृति को ईश्वरकृत मानने में दुविधा नहीं होती, क्योंकि हम पाते हैं कि उसका एक कण भी बनाना आजतक मनुष्य की बुद्धि के परे है। परन्तु किसी पुस्तक को ईश्वर की रचना कैसे माना जाए? भाषा तो मनुष्य द्वारा बनाई हुई है, तो उस भाषा द्वारा रचना ईश्वर क्योंकर करेगा? सांख्य में इस विषय पर कुछ आश्चर्यजनक हेतु प्रस्तुत किए गए हैं। इस लेख में मैं उनका विवरण दे रही हूँ।

सत्यार्थ-प्रकाश में महर्षि ने स्पष्ट शब्दों में इस मत को रखा है। वहीं से आरम्भ करते हैं। प्रश्न उठता है- "वेद को ईश्वर से होने की आवश्यकता कुछ भी नहीं, क्योंकि मनुष्य लोग क्रमशः ज्ञान बढ़ाते जाकर पश्चात् पुस्तक भी बना लेंगे।" तो महर्षि कहते हैं- "कभी नहीं बना सकते क्योंकि बिना कारण के कार्योत्पत्ति का होना असम्भव है। जैसे जंगली मनुष्य सृष्टि को देखकर भी विद्वान् नहीं होते और जब उनको कोई शिक्षक मिल जाए तो विद्वान् हो जाते हैं और अब किसी से पढ़े बिना कोई विद्वान् नहीं होता। इस प्रकार जो परमात्मा उन आदि सृष्टि के ऋषियों को वेदविद्या न पढ़ाता और वे अन्य को न पढ़ाते, तो सब लोग अविद्वान् रह जाते। जैसे किसी के बालक को जन्म से एकान्त देश, अविद्वानों वा पशुओं के संग रख देवें, तो वह जैसा संग है, वैसा ही हो जाएगा। इसका दृष्टान्त जंगली भील आदि हैं।"

मुझ जैसे लोगों को यहाँ आपत्ति हुई कि काई प्रकार का ज्ञान है जिसे मनुष्य ने अपने आप ढूंढ़ निकाला। जैसे बीजगणित (Algebra), रेडियो-एक्तिविटी (Radioactivity), आनुवांशिक-अणु (Gane) आदि। इसमें वेद का कुछ भी हस्तक्षेप नहीं था। मैं अपनी भूल तब जानी जब प्रशान्त महासागर के एक दूरस्थ द्वीप पर रहने वाले कुछ आदिवासियों का जीवन टी०वी० पर देखा। उनका जीवन जंगली जानवरों से कुछ ही बेहतर था। ऋषि से तो वे सब भी बहुत दूर थे। तब समझ में आया कि वेद के उपदेश 'कृषिं कृषस्व' से ही यह परम्परा प्रारम्भ हुई, नहीं तो एक घास से अनाज उत्पन्न करने की कौन सोचेगा? वेद केवल बीज-रूप में बात कहते हैं। मनुष्य में इतना सामर्थ्य है कि वह उतने दिशा-निर्देश से ही उस ज्ञान को मीलों दूर ले जा सके परन्तु बिना प्रारम्भिक ज्ञान के कुछ भी विकास सम्भव नहीं है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में महर्षि ने और भी विस्तार से इस विषय पर चर्चा की है। वह देखने योग्य है।

सांख्यदर्शन में इस विषय को अन्य प्रकार से प्रमाणित किया गया है। शब्द प्रमाण के प्रकरण में, महर्षि कपिल कहते हैं-

वाच्यवाचकभावः सम्बन्धः शब्दार्थयोः॥ सां० ५।३७॥

अर्थात् शब्द व अर्थ का सम्बन्ध क्रमशः वाचक और वाच्य का है - अर्थ जो अभिप्रेत है, वह वाच्य है और शब्द उसको जनाता है, इसलिए वाचक है। यह सम्बनध हमारे मस्तिष्क में किस प्रकार स्थापित होता है, इस पर वे कहते हैं-

त्रिभिः सम्बन्धसिद्धिः॥ सां० ५।३८॥

अनु०- शब्दार्थयोः

तीन प्रकार से शब्द और अर्थ के बीच सम्बन्ध

सिद्ध होता है। ये तीन प्रकार क्या हैं, इस पर विभिन्न व्याख्याकारों ने विभिन्न मत प्रस्तुत किए हैं, परन्तु मेरे अनुसार कपिल ने यहाँ इन तीन प्रकारों का और अधिक विवरण इसलिए नहीं दिया है क्योंकि वे पहले दिए जा चुके हैं। वे वही हैं जिनसे ज्ञान-प्राप्ति बताई गई है- प्रत्यक्ष, अनुमान व शब्द प्रमाण। वह इस प्रकार-

१) प्रत्यक्ष- जब माँ अपने शिशु को कहती है, "देख बेटी, यह कुत्ता है।" तब वह शिशु की स्मृति में 'कुत्ता' शब्द और उसके अर्थ को स्थापित करती है।

२) अनुमान- जब पिता शिशु को कहता है, "देख बेटा, इन दो सेबों और इन दो सन्तरों में जो वस्तु बराबर है, वह है गिनती दो।" तब वह पिता अनुमान से 'दो' शब्द और अर्थ में सम्बन्ध स्थापित करता है।

३) शब्द- शब्द से ही शब्द सीखे जाएं, इसमें तो अन्योऽन्याश्रय दोष प्रतीत होता है। परन्तु वास्तव में हम अधिकतर ज्ञान शब्दों से ही प्राप्त करते हैं। मनुष्यों को जानवरों से इसी के कारण तो अधिक ज्ञान होता है। इसका उदाहरण है जब गुरु शिष्य से कहता है, "जिससे सत्य ज्ञान हो, उसे प्रमाण कहते हैं।" तब वह प्रमाण शब्द का ग्रहण करवाता है। इस प्रकार छोटे-छोटे शब्दों को प्रथम दो प्रकार से सीख कर, हम बहुत कठिन शब्द तीसरे प्रकार से सीखते हैं और अतीन्द्रिय ज्ञान भी शब्द द्वारा प्राप्त कर लेते हैं।

अब वेद की विलक्षणता को दर्शाते हुए कपिल कहते हैं-

न त्रिभिरपौरुषेयत्वाद्वेदस्य तदर्थस्याप्यतीन्द्रिय-त्वात्॥ सां० ५।४१॥ अनु०- वेदार्थप्रतीतिः

अर्थात् वेदों के शब्द-अर्थ-सम्बन्ध तीनों ही उपर्युक्त प्रकारों से नहीं होते, क्योंकि वेद अपौरुषेय हैं और उनके अर्थ (प्रायः) इन्द्रियों से परे हैं। क्योंकि वेदों को मनुष्यों ने नहीं बनाया है, इसलिए उनके शब्दार्थ मनुष्य को कौन बताएगा? सो प्रारम्भिक अत्यन्त पवित्र ऋषियों की बुद्धियों में इन अर्थों को परमात्मा स्वाभाविक रूप से प्रकाशित करते हैं। ऊपर के तीनों ही प्रकारों में मनुष्य का हस्तक्षेप है (उदाहरणों में माता, पिता व गुरु का)। इसलिए सृष्ट्यारम्भ में उन पवित्रात्माओं को चुना गया जिन में, बिना किसी शब्दज्ञान के भी, वह ज्ञान आरोपित किया जा सके। वह शक्ति वेदों के शब्दों में ही उपलब्ध है।

अब दूसरा हेतु देखिए- अतीन्द्रियत्व। जैसे हमने ऊपर देखा, यह गुण तो मानुषिक शब्द में भी प्राप्त होता है- मनुष्य के शब्द भी अतीन्द्रिय वस्तुओं का वर्णन करते हैं। सो, यह हेतु वस्तुतः वेदों के अपौरुषेयत्व के लिए है-वेद अपौरुषेय हैं क्योंकि उनके विषय अतीन्द्रिय हैं। मनुष्य-सृष्टि के आरम्भ में जब वेदों का प्रादुर्भाव हुआ, तब अतीन्द्रिय विषय मनुष्य के ग्रहण के परे थे। इसलिए उनको किसी ग्रन्थ में निबद्ध करना किसी भी मानव के सामर्थ्य के बाहर था। इसलिए वेदों को परमात्मा की कृति मानने के लिए हमें बाध्य होना पड़ता है।

आगे कपिल कहते हैं-

न यज्ञादेः स्वरूपतो धर्मत्वं वैशिष्ट्ययात्॥ सां० ५।४२॥ अनु०- अपौरुषेयत्वाद्वेदस्य तदर्थस्याप्य- तीन्द्रियत्वात्

अर्थात् वेदों का अपौरुषेयत्व और उनके अर्थों का अतीन्द्रिय होना इससे प्रमाणित होता है कि यज्ञादि अनेक धार्मिक कृत्यों का स्वरूप से धर्मत्व नहीं है, क्योंकि उन कर्मों में विशेषता है।

यदि हम यज्ञ को ही देखें तो लगता है कि पौष्टिक वस्तुओं को व्यर्थ ही अग्नि में भस्म किया जा रहा है। यज्ञ की प्रक्रिया में क्या विशेषता है, कैसे वह पर्यावरण के लिए लाभकारी है, इसका विज्ञान अभी तक खुलासा नहीं कर पाया है। इसका अर्थ यह हुआ कि वेदों में जिसे धर्म कहा गया है, वह सर्वदा मनुष्य की बुद्ध्यानुसार नहीं है। परन्तु उसके कल्याणकारी

फलों को हम कभी-कभी देख पाते हैं। तब हमें मानना पड़ता है कि मनुष्य-बुद्धि ने उस धर्म के कथन का सृजन नहीं किया हो सकता।

आगे कपिल और भी स्पष्टत: कहते हैं-

न पौरुषेयत्वं तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात्॥ सां० ५।४६॥ अनु०- वेदानाम्

वेद पौरुषेय नहीं हैं क्योंकि उनके करने वाले पुरुष का अभाव है।

वेदों का उल्लेख प्राचीनतम ग्रन्थों तक में उपलब्ध है परन्तु किसी ने उनको किसी व्यक्ति-विशेष की कृति नहीं बताया है। जो महर्षि व्यास के नाम से यह प्रसिद्ध है कि उन्होंने वेद-मन्त्रों का चार संहिताओं में संयोजन किया, तो वह अतिशयोक्ति भी केवल मन्त्रों के क्रम उलट-पुलट करने के लिए है (सम्भवत: अपने गुरु की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए उनके शिष्यों द्वारा ऐसा कहा गया); वहाँ भी यह नहीं कहा गया कि व्यास ने वेदों की रचना की।

यही नहीं-

न मुक्तामुक्तयोरयोग्यत्वात्॥ सां० ५।४७॥ अनु०- वेदानां, तत्कर्तुः

कपिल कहते हैं कि वेदों को रचने का सामर्थ्य न तो अमुक्तात्माओं (प्रधानत: मनुष्यों) में है और न मुक्तात्माओं में ही है।

यहाँ कपिल इंगित कर रहे हैं कि जिन्होंने वेद स्वयं समझे नहीं, उनका यह कहना कि वेद मनुष्य-कृति है, वृथा प्रलाप है क्योंकि उन्होंने वह अमृत चखा ही कहाँ है? जो वे कुछ भी उसके विषय में बता सकें। बातों के महल तो कोई भी खड़े कर सकता है। दूसरी ओर, जिसने भी वेदों का रसपान किया है, उसे तुरन्त ज्ञात हो जाता है कि यह अल्पज्ञ जीवात्मा की कृति हो ही नहीं सकते। इस प्रकार एक छोटे-से वाक्य में कपिल क्या कुछ कह गए!

जिज्ञासुओं के लिए वे इस बात को और अधिक स्पष्ट करते हैं-

यस्मिन्नदृष्टेऽपि कृतबुद्धिरुपजायते तत् पौरुषेयम्॥ सां० ५।५०॥ अनु०- तत्कर्तुः

जैसे 'पौरुषेय' की परिभाषा देते हुए कपिल कहते हैं- जिसमें कर्त्ता के न दिखने पर भी, ऐसा स्पष्ट ज्ञान होता है कि इस वस्तु को बनाया गया है, वह पौरुषेय = पुरुष/मानव-निर्मित होती है।

यह तो सामान्य अनुभव है कि कौन-सी वस्तु मनुष्य ने बनाई है, वह हम सरलता से जान लेते हैं। दूसरी ओर प्राकृतिक वस्तुओं में हमें एक स्वाभाविकता की प्रतीती होती है, जिससे भी हम जान जाते हैं कि यह पदार्थ मानव का बनाया नहीं है। यदि इस विषय पर हम गहन विचार करें, तो हमें समझ में आएगा कि यह प्रतीति इसलिए होती है कि प्राकृतिक वस्तुएँ खुलती चली जाती हैं। जैसे कोई ऐसा घर हो जहाँ हम द्वार खोलते जाएँ परन्तु प्रकोष्ठों का अन्त ही न हो। उदाहरण के लिए, यदि हम एक सुन्दर कृत्रिम फूल को देखते हैं तो कपड़ा, प्लास्टिक आदि की बनावट की प्रशंसा करने के पश्चात्, फूल में कुछ भी देखने को नहीं बचता। अब एक प्राकृतिक फूल उठाइये। बाहरी सुन्दरता से प्रसन्न होकर, अब उसको खोलिए- उसमें पंखुड़ियाँ, नर व मादा भाग की सुन्दरता को निहारिए। फिर अल्ट्रा-वायलैट किरण में इसे देखिए तो ज्ञात होगा कि वहाँ भवरों को दिखने वाला दृश्य कुछ और ही है। फिर नर और मादा भागों को आधे में काटकर, सूक्ष्मदर्शिका (Microscope) में देखिए। वहाँ और एक ब्रह्माण्ड खुल जायेगा। इस प्रकार सूक्ष्म से सूक्ष्मतर देखते-देखते आप परमाणु तक पहुँच सकते हैं और वहाँ पर भी कहानी समाप्त नहीं होती, यह हम जानते ही हैं। इस प्रकार की जब हम क्लिष्ट

शेष पृष्ठ २१ पर

दो सनातन सत्ताएँ – शंका समाधान

(पं० रामचन्द्र जी देहलवी)

प्रश्न– अनादि किसको कहते हैं?

उत्तर– जिसका आदि अर्थात् आरम्भ न हो, उसको अनादि कहते हैं। जो सदा से हो। जो उत्पन्न न हुआ हो, अरबी भाषा में उसको अज़ली कहते हैं।

प्रश्न– अनन्त किसको कहते हैं?

उत्तर– जिसका अन्त अर्थात् नाश न हो उसको अनन्त कहते हैं। जो सदा रहे। अरबी भाषा में उसी को गैर फ़ानी अथवा अबदी कहते हैं।

प्रश्न– क्या अनादि तथा अनन्त दो प्रकार के पदार्थ होते हैं?

उत्तर– नहीं! जो पदार्थ अनादि होते हैं वही अनन्त होते हैं। न वे उत्पन्न होते हैं और न ही नष्ट होते हैं। इनको दर्शन की भाषा में 'नित्य' कहते हैं। **सदकारणवन्नित्यम्**[४]– जिसका सद्भाव हो और जिसका अन्य कारण न हो उसको नित्य कहते हैं। जिसका अस्तित्व किसी कर्त्ता के बिना सदा से हो उसको अरबी भाषा में वाजिबुलवजूद (नित्य) कहते हैं।

प्रश्न– क्या अनादि पदार्थ एक ही प्रकार का होता है अथवा उसके कई भेद होते हैं?

उत्तर– अनादि पदार्थ दो प्रकार के होते हैं– **एक अपराश्रित अनादि** और दूसरा **पराश्रित अनादि।** अपराश्रित अनादि को स्वरूप कहते हैं। उसके स्वरूप में न कोई विकार होता है न परिणाम और न उसका अस्तित्व किसी अन्य पर अवलम्बित होता है। वह स्वम्भू होता है। पराश्रित अनादि अपराश्रित अनादि पर अवलम्बित होता है। वह स्वतन्त्र नहीं होता जैसे अनादि काल से प्रकृति पर डाली हुई ईश्वर की क्रिया का प्रभाव ईश्वर पर अवलम्बित है। यह ईश्वर की दी हुई क्रिया से हो रहा है, स्वयं नहीं। यदि ईश्वर न दे तो वह न हो। ईश्वर स्वरूप से अनादि है। परन्तु यह प्रभाव परतन्त्र होते हुए अनादि भी है, क्योंकि जब से ईश्वर है तभी से प्रकृति पर पड़ रहा है, इसलिए यह प्रभाव पराश्रित अनादि कहलाएगा।

प्रश्न– क्या जिस समय कर्त्ता क्रिया देता है उसी क्षण में उसका प्रभाव अन्य पदार्थ पर पड़ता है अथवा इन दोनों में कुछ कालभेद भी होता है?

उत्तर– कालभेद नहीं होता। जैसे अँगूठी वाली अंगुली को हिलाने से अँगूठी और अँगुली साथ-साथ हिलती हैं आगे पीछे नहीं। और इञ्जन के चलने से गाड़ियाँ भी साथ-साथ चलती हैं। इसी प्रकार ईश्वर जो सर्वत्र व्यापक है, उसकी क्रिया का प्रभाव भी उसकी क्रिया कि साथ-साथ पड़ता है। इसमें काल का आगा-पीछा नहीं होता। काल की अपेक्षा से उत्पादक और उत्पन्न समान होते हैं। केवल क्रिया का कारण होने से उत्पादक स्वाधीन होता है और उत्पन्न पराधीन होता है।

प्रश्न– इस प्रकार तो पिता व पुत्र दोनों समान आयु के हो जाते हैं जो कि लोक विरुद्ध है?

उत्तर– कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है जो पुत्र की उत्पत्ति से पूर्व पिता बन गया हो। यदि ऐसा होता तो एक वर्ष का बालक भी पिता कहलाता। जब पुत्र उत्पन्न हो जाता है उसके पीछे ही कोई पिता कहलाता है, इससे तो पिता ही पुत्र से छोटा सिद्ध होता है, परन्तु पिताओं का आदर दृष्टि में रखते हुए मैं दोनों

वैशेषिक दर्शन ४.१.१

को समान ही मान लेता हूँ।

प्रश्न- पिता व पुत्र तो परस्पर के सम्बन्ध का नाम है। यह तो सब जान साथ-साथ उत्पन्न होने वाला मानते हैं, परन्तु जो मनुष्य पिता है उसकी आयु तो पुत्र से बड़ी है?

उत्तर- जितनी आयु पिता की पुत्र से बड़ी होती है वह तो **पिता बनने की आशा (उम्मीदवारी) में व्यय हुई है** यदि वह न्यूनता मनुष्य में न होती तो तर्कानुकूल यह परिणाम निकलता कि पिता व पुत्र में आयु की छुटाई-बड़ाई भी न होती। **अतः ईश्वर अनादि काल से कर्त्ता होने के कारण उसका कर्म भी उसके आश्रित होने से काल की अपेक्षा उसी के समान अनादि होता है।**

प्रश्न- प्रवाह से अनादि किसको कहते हैं?

उत्तर- 'प्रवाह से अनादि' पराश्रित अनादि का ही एक भेद है। **ईश्वर की क्रिया के दो फल होते हैं। एक सृष्टि का दूसरा प्रलय।** सृष्टि और प्रलय एक-दूसरे से विरुद्ध हैं। जब सृष्टि होगी तब प्रलय नहीं हो सकती और जब प्रलय होगी तब सृष्टि नहीं हो सकती। इसलिए ये दोनों आगे पीछे होती रहती हैं। संकल की कड़ियों के समान अनादि काल से इन दोनों का होते रहना प्रवाह से अनादि कहलाता है।

प्रश्न- प्रवाह शब्द का अर्थ क्या है?

उत्तर- लगातार बहना, अटूट परम्परा। उर्दू में इसे सिलसिला या जंजीर कह सकते हैं।

प्रश्न- अनादि पदार्थ कैसे होते हैं। अर्थात् उनमें क्या विशेषता होती है जिसके कारण न वह उत्पन्न हो सकते हैं और न विनष्ट हो सकते हैं?

उत्तर- वे निरवयव होने से उत्पत्ति और विनाश से मुक्त होते हैं। **संयोग और वियोग से वस्तु बना और बिगड़ा करती है।** वे न संयोग से बने हैं और न वियोग को स्वीकार करते हैं, इसलिए नाशवान नहीं होते।

प्रश्न- निरवयव पदार्थ कितनी प्रकार के होते हैं?

उत्तर- वे दो प्रकार के होते हैं। सबसे छोटा और सबसे बड़ा जिनको शास्त्र में अणु और महत् कहते हैं। ये दोनों अवयवरहित होते हैं।

प्रश्न- सबसे छोटा और सबसे बड़ा नष्ट क्यों नहीं हो सकता?

उत्तर- सबसे छोटा होने का अर्थ ही यह है कि जिसके आगे विभाग नहीं हो सकता। और जब विभाग नहीं हो सकता तो वह उसी रूप में स्थिर रहने से विनाश रहित ही कहलाएगा। इसी प्रकार से सबसे बड़े का भी विभाग नहीं हो सकेगा क्योंकि विभाग करने के लिए बीच में रिक्त स्थान चाहिये। सबसे बड़ा आकाश में सर्वत्र होगा और सर्वव्यापी होगा। सर्वव्यापक में रिक्त स्थान होना सम्भव नहीं अतः सबसे बड़ा भी अविनाशी होगा।

प्रश्न- तो फिर कौन सा पदार्थ नाशवान होगा और उसको शास्त्र की परिभाषा में क्या कहते हैं?

उत्तर- उपर्युक्त दोनों के बीच वाला नाशवान होगा और उसको शास्त्र में मध्यम परिणाम वाला कहते हैं।

प्रश्न- मध्यम परिणाम का क्या अर्थ है?

उत्तर- जिस पदार्थ में लम्बाई, चौड़ाई व गहराई हो वह मध्यम परिणाम वाला कहलता है और जिसमें ये तीन परिणाम नहीं होते वे अणु और महत् परिणाम वाले कहाते हैं।

प्रश्न- क्या सबसे छोटे में कोई परिणाम नहीं होता है, यदि नहीं होता तो बने हुए पदार्थों में परिणाम कहाँ से आता है? क्या अभाव से भाव का होना आप मानते हैं?

उत्तर- सबसे छोटे में परिणाम तो होता है परन्तु वह कई परिणामों से मिलकर उत्पन्न होता है। वह तो कारण रूप परिणाम होता है, जो अभेद्य होता है। सबसे छोटा पदार्थ न नापा जा सकता है न तो तोला जा सकता है क्योंकि उससे कोई छोटा पदार्थ होता ही नहीं जो कि उसे नापे अथवा तोले। मन को सेरों से तोलते हैं, सेर को तोलों से, तोले को माशों से, माशे को रत्तियों से, रत्ती को चावलों से, चावल को पोस्त के दानों से, परन्तु पोस्त के दानों को बिना तुला ही रखते हैं क्योंकि व्यवहार में उससे छोटा बाट है ही नहीं। अत: पोस्त का दाना बेतोल बाट है जो अपने जैसे कई दानों को मिलाकर बड़े बाटों को उत्पन्न करता है। परन्तु स्वयं इस प्रकार से उत्पन्न नहीं होता इसलिए ऐसे पदार्थ को जो नाप-तोल से परे हो वयवहार में परिणाम रहित ही कहते हैं। रेखा गणित (Geomerty) में इसीलिये बिन्दु (Point) का लक्षण किया है कि Point is that which has a position but no magnitude अर्थात् बिन्दु (परमाणु) वह है जिसका अस्तित्व (कारण रूप परिणाम) तो होता है परन्तु कार्य रूप परिणाम-लम्बाई, चौड़ाई और गहराई- नहीं होती। परमाणु को अरबी भाषा में 'जर्रा' और दार्शनिक भाषा में 'जुज़े ला यतजज्जा' कहते हैं अर्थात् वह जुज़ जिसका कोई जुज़ न हो सके।

प्रश्न- चाहे परमाणु कितना ही छोटा होता हो तो भी उसकी भुजाएँ (पार्श्व) तो अवयव होती होंगी जिधर से जुड़कर दूसरे परमाणु मिलें और उससे कोई अवयव वस्तु उत्पन्न हो। भुजायें होने की अवस्था में परमाणु का वह भाग जो सब भुजाओं के बीच में है वह अवश्य स्थान घेरता होगा तथा जो भाग स्थान घेरता है वह विभक्त भी हो सकता है। जो विभक्त हो सकता है वह विनष्ट भी हो सकता है। अत: परमाणु अविनाशी नहीं हो सकता?

उत्तर- यह मतभेद तो हो सकता है कि एक पुरुष जिसको परमाणु कहे दूसरा उसको परमाणु न माने। परन्तु इस नियम में कोई मतभेद नहीं हो सकता कि जहाँ से सबसे पहले संयोग आरम्भ हुआ था वह परमाणु अवस्था ही होगी; जो अवयवरहित होने से विभाग के योग्य न होगी।

प्रश्न- प्रश्न तो यह है कि जब परमाणु भी उपर्युक्त रीति से स्थान घेरने वाला सिद्ध होता है तो उसका विभाग क्यों नहीं हो सकता?

उत्तर- भौतिक पदार्थ चाहें सावयव हों या निरवयव दोनों ही अपने-अपने योग्य स्थान घेरते हैं। स्थान घेरना विभाग का कारण नहीं है। केवल सावयव होना विभाग का कारण है। क्योंकि सावयव में आकाश होता है। निरवयव में आकाश नहीं होता इसलिये उसका विभाग नहीं हो सकता। परमाणु सावयव नहीं होता इसलिये उसका विभाग भी नहीं होता।

प्रश्न- 'ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका' में प्रलयावस्था का वर्णन करते हुए ऋषि दयानन्द ने लिखा है कि उस समय केवल परमात्मा की सामर्थ्य विराजमान थी, और आकाश, प्रकृति व परमाणु आदि नहीं थे। परन्तु अन्य स्थानों पर इनको अनादि लिखा है इसका समाधान क्या है?

उत्तर- स्वामी जी ने 'सामर्थ्य' शब्द का प्रयोग जगत् के परम कारण, अर्थात् 'मूल प्रकृति' के लिए ही किया है। ईश्वर में जो शक्ति जगत् के रचने की है उसके लिये नहीं किया है। **क्योंकि गुण या कर्म किसी द्रव्य का उपादान कारण नहीं हो सकता।** जैसा कि स्वामी जी महाराज सत्यार्थप्रकाश के १३वें समुल्लास में चौथी समीक्षा में लिखते हैं-

"और आदम को उत्पन्न कहाँ से किया?

(ईसाई)- मिट्टी से बनाया।

(समीक्षक)- मिट्टी कहाँ से बनाई?

(ईसाई)- अपनी कुदरत अर्थात् सामर्थ्य से?

(समीक्षक)- ईश्वर का सामर्थ्य अनादि है अथवा नवीन?

(ईसाई)- अनादि है।

(समीक्षक)- जब अनादि है तो जगत् का कारण सनातन हुआ फिर अभाव से भाव क्यों मानते हो?" (यहाँ स्वामी जी स्पष्ट रूप से 'सामर्थ्य' को जगत् का कारण मान रहे हैं।)

"(ईसाई)- सृष्टि के पूर्व ईश्वर के बिना कोई वस्तु नहीं थी।

(समीक्षक)- जब नहीं थी तो यह जगत् कहाँ से बना? और ईश्वर का सामर्थ्य द्रव्य है या गुण? जो द्रव्य है तो ईश्वर से भिन्न दूसरा पदार्थ था, **और जो गुण है तो गुण से द्रव्य कभी नहीं बन सकता।** जैसे रूप से अग्नि और रस से जल नहीं बन सकता और जो ईश्वर से जगत् बना हो तो **ईश्वर के सदृश गुण-कर्म-स्वभाव वाला होता,** उसके गुण-कर्म-स्वभाव के सदृश न होने से यही निश्चय है कि ईश्वर से बना नहीं किन्तु **जगत् के कारण परमाणु आदि नाम वाले जड़ से बना है।"**

प्रलय काल में जगत् के उपादान कारण की जो अवस्था होती है उसको अनेक नामों से कहा गया है। उनमें से बहुत से नाम सापेक्ष हैं, जो कार्य जगत् की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं की अपेक्षा से उत्पन्न होते हैं। प्रलय-काल में इन कार्यावस्थाओं का अभाव रहता है तो जो नाम इन अवस्थाओं की अपेक्षा से उत्पन्न होते हैं उनका भी जैसे विकृति के अभाव में 'प्रकृति नाम' का अभाव रहता है। और अणु (जो परमाणुओं के संयोग से बनता है) के अभाव में 'परमाणु संज्ञा' का अभाव रहता है, परन्तु वह मूल तत्त्व जिसके ये अपेक्षाकृत नाम हैं वर्तमान रहता है-जिसको स्वामी जी महाराज ने सामर्थ्य नाम से निर्देश किया है और प्रकृति परमाणु आदि सापेक्ष नामों का अभाव बताया है। निम्नलिखित उदाहरण इसको विस्पष्ट कर देगा।

जब मैं अपने घर में अकेला था और मेरा विवाह नहीं हुआ था उस समय मेरा घर और पुरुष रूप में मैं, विराजमान थे। उस समय न कोई पति था और न पिता था क्योंकि अकेली अवस्था में इनके व्यवहार का अभाव था। परन्तु जब मेरी पत्नी आ गई तब मैं पति कहलाया और जब सन्तान हुई तो मैं पिता कहलाया। कुछ काल के पीछे मेरी पत्नी का देहान्त हो गया तो मेरा पति कहलाना बन्द हो गया। इसी प्रकार जगत् की उत्पत्ति से पूर्व और नाश के पश्चात् सापेक्ष नामों के व्यवहार का वर्तमान नहीं रहता।

प्रश्न- क्यों सामर्थ्य शब्द अपेक्षा शून्य है?

उत्तर- नहीं, ईश्वर में जगत् उत्पन्न करने के सनातन सामर्थ्य के साथ इस सामर्थ्य शब्द की अपेक्षा है। किसी नूतन व उत्पन्न होने वाली वस्तु के साथ नहीं है। जैसे कि प्रकृति व परमाणु आदि शब्दों के सम्बन्ध में बता चुके हैं।

प्रश्न- इसको थोड़ा स्पष्ट करक समझाइये।

उत्तर- सामर्थ्य शब्द का अर्थ है "समान अर्थ का भाव हो जिसमें" अर्थात् परमात्मा की जगदुत्पादक शक्ति निमित्त कारण के रूप में जिस अर्थ को पूरा करती है उसी को उपादान कारण के रूप में प्रकृति पूरा करती है। दोनों में समान अर्थ का भाव है इसलिए जगत् के कारण को सामर्थ्य नाम से लिखा गया है। जैसे कुम्हार जिस घड़े को बनाता है उसी घड़े को दण्ड, चक्र और मिट्टी भी बनाते हैं। अर्थात् दण्ड, चक्र और मिट्टी में और पुरुष के कर्तृत्व में समान अर्थ का भाव है इसलिये इनको सामर्थ्य कह सकते

शेष पृष्ठ १८ पर

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः

(महात्मा चैतन्यस्वामी, सुन्दर नगर, हिमाचल प्रदेश, चलभाष : ९४१८०५३०९२)

न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः सन्नद्धो मनसा चरामि।
यदा मागन्प्रथमजा ऋतस्यादिद्वाचो अश्नुवे भागमस्याः॥
(ऋ० १-१६४-३७)

(यदि वा इदं अस्मि) 'यह हूँ या यह हूँ' इस प्रकार ठीक-ठीक अपने रूप को **(न विजानामि)** मैं नहीं जानता। न जानने का कारण यह है कि मैं **(निण्यः)** अन्तर्हित हूँ, ढका हुआ-सा हूँ। ढके हुए का कारण यह है कि **(मनसा)** मन से **(सन्नद्धः)** सम्बन्ध होकर **(चरामि)** मैं यहां संसार में विचर रहा हूँ। मन ने मुझे बुरी तरह बान्धा हुआ है। परन्तु **(यदा)** जब कभी प्रभु-कृपा से सत्संगादि के क्रम से **(मा)** मुझे **(ऋतस्य)** सब सत्य वाणियों का प्रकाश करने वाली **(प्रथमजा)** सृष्टि के प्रारंभ में, ऋषियों के हृदयों में प्रादुर्भूत हुई वेदवाणी **(आगन्)** प्राप्त होती है तो उस समय **(आत् इत्)** उसके बाद अविलम्ब ही **(अस्य वाचः)** इस वेदवाणी से मैं **(भागम्)** भजनीय, सेवनीय आत्म-स्वरूप को **(अश्नुवे)** प्राप्त कर लेता हूँ.... जान लेता हूँ.... बड़ा ही आश्चर्य है कि संसार में आकर व्यक्ति का अपने आप से ही परिचय नहीं हो पाता है और इसका कारण मन्त्र में बताया गया कि यह मन व्यक्ति को बाह्य-विषयों और भोगों की ओर ही उलझाए रखता है मगर जब व्यक्ति सत्संग और विशेषतः वेदाध्ययन के द्वारा यह जान लेता है कि उसका लक्ष्य तो प्रभु प्राप्ति है तो वह उसे प्राप्त करने के लिए संकल्पशील हो जाता है और साधना के द्वारा अपने परम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। वेद आदेश देता है-

स्वयं वाजिनस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व।
महिमा तेऽन्येन न सन्नशे॥ (यजु० २३-१५)

(स्वयम्) अपने आप **(वाजिन्)** (क्रियाशील व शक्तिशालीन्) ज्ञान, बल, क्रिया को चाहने वाले मनुष्य, **(स्वयम् तन्वम्)** अपने आप अपने शरीर को **(कल्पयस्व)** शक्तिशाली व सामर्थ्यवान बना, तू औरों का ध्यान न करके अर्थात् वे अपने शरीर को शक्तिशाली बनाते हैं या नहीं इसका विचार न करके स्वयं अपने आप को शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न कर। शक्तिशाली बनकर **(स्वयम्)** आप ही **(यजस्व)** यज्ञशील बन तथा परिश्रम कर और यज्ञशील बनकर **(स्वयम् जुषस्व)** तू स्वयं प्रभु की प्रीतिपूर्वक उपासना करने वाला बन। इस प्रकार जीवन बिताने पर **(अन्येन)** दूसरे से **(ते महिमा)** तेरी महिमा, महत्व, यश, कीर्ति, प्रसिद्धि **(न)** नहीं **(सन्नशे)** नष्ट की जा सकती है अर्थात् फिर कोई भी संसार में तेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता है....।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने सत्यार्थप्रकाश के अष्टम समुल्लास में सृष्टि का प्रयोजन बताते हुए कहा है कि-ईश्वर के सृष्टिनिमित गुण-कर्म-स्वभाव का साफल्य तथा प्रकाशन और जीवों के कर्मों का यथावत भोग करना तथा अपवर्ग अर्थात् सब दुःखों से छूट मोक्ष प्राप्त करना....। उनका कथन है कि जीवों को यहाँ पर अपने कर्मों का भोग भोगना है और साथ ही परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभावानुसार अपना जीवन बनाकर मोक्ष प्राप्त करना है। यह एक ध्रुव सत्य है कि मुक्ति प्राप्त किए बिना संसार में कोई भी व्यक्ति दुःखों से नहीं छूट सकता है मगर इसके लिए दुःख के कारणों को पहले जानना अपेक्षित है। वास्तव में अपने स्वरूप को भूलने के कारण ही हम दुःखों का बोझा ढोए फिर रहे हैं।

प्रसिद्ध दार्शनिक फ्रायड ने एक महत्त्वपूर्ण बात यह कही है कि 'वह व्यक्ति कभी सुखी नहीं हो सकता जिसे यह नहीं मालूम कि उसे क्या चाहिए?' जब तक व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं जानेगा तब-तक उसे

यह कैसे पता चलेगा कि उसे क्या चाहिए? जब व्यक्ति स्वयं को जानेगा तभी तो उसे पता चल सकेगा कि उसके लिए वास्तविक सुख क्या है? उसका वास्तविक मित्र कौन है? उसे तृप्ति कैसे प्राप्त हो सकती है? उसकी वास्तविक खुराक क्या है? उसकी मंजिल क्या है? उसे जाना कहाँ है? योग-ध्यान व उपासनादि वास्तव में स्वयं को जानने के लिए ही किया जाता है। व्यक्ति को अपने मन, बुद्धि व चित्त आदि का सही-सही सदुपयोग करना चाहिए इससे ही वह अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। साधना में व्यक्ति को सर्वदा सांसारिकता अर्थात् लौकिकता से उपराम रहने की आवश्यकता है और चित्त वृत्तियों के प्रति जागरूक रहना चाहिए। यह सब तभी हो सकेगा जब व्यक्ति चित्त-साक्षी की स्मृति बनाए रखेगा। वास्तव में ये सब उपकरण आत्मा के हैं और आत्मा को मालिक बनकर इनका उपयोग करने की आवश्यकता है। प्रश्नोपनिषद् में कहा गया (चतुर्थ प्रश्न) है-

य यथा सौम्य वयांसि वासोवृक्षं संप्रतिष्ठन्ते।
एवं ह वै तत्सर्वं पर आत्कनि संप्रतिष्ठते॥

उपरोक्त मन, बुद्धि, चित्त आदि किसमें प्रतिष्ठित हैं? इसका उत्तर दिया गया कि हे सोम्य! जैसे पक्षी वृक्ष में वास बना लेते हैं, उसमें प्रतिष्ठित रहते हैं, इसी प्रकार इन्द्रियाँ, मन, प्राण आदि सब आत्मा में प्रतिष्ठित हैं। **पृथिवी च पृथिवीमात्र चापश्चापोमात्र च तेजश्च तेजोमात्र च वायुश्च वायुमात्र चाकाशश्चाकाशमात्र च चक्षुश्च द्रष्टव्यं च श्रोत्रं च श्रोतव्यं च घ्राणं च घ्रातव्यं च....एष हि द्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा.... परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स यो ह वै....विज्ञानात्मा सह देवैश्च सर्वैः प्राणा भूतानि संप्रतिष्ठन्ति....** स्थूल-पृथिवी, सूक्ष्म-पृथिवी, स्थूल-जल, सूक्ष्म-जल, स्थूल-तेज, सूक्ष्म-तेज, स्थूल-वायु, सूक्ष्म-वायु, स्थूल-आकाश, सूक्ष्म-आकाश अर्थात् सम्पूर्ण भौतिक जगत् या ब्रह्माण्ड....आंख व आंख के विषय, श्रोत्र व श्रोत्र के विषय, घ्राण, घ्राण के विषय, रस, रस के विषय, त्वचा, त्वचा के विषय, वाणी, वाणी के विषय, हाथ, हाथ के विषय, उपस्थ, उपस्थ के विषय, पायु, पायु के विषय, पांव, पांव के विषय, मन, मन के विषय, बुद्धि, बुद्धि के विषय, अहंकार, अंहकार के विषय, चित्त, चित्त के विषय, शरीर का तेज और जो कुछ चमकता है, प्राण और प्राण द्वारा जो कुछ धारण होता है-अर्थात् सम्पूर्ण आध्यात्मिक जगत् या पिण्ड। इन सबका वही पुरुष, विज्ञानमय, आत्मा द्रष्टा है, श्रोता है, स्प्रष्टा है, घ्राता है, रसयिता है, मन्ता है, बोद्धा है, कर्त्ता है। वह विज्ञानात्मा परम अक्षर आत्मा में प्रतिष्ठित होता है.... हे सोम्य! जो विज्ञानमय आत्मा उस अक्षर ब्रह्म को जान लेता है जिसमें सब इन्द्रियाँ, सब प्राण और सब महाभूत प्रतिष्ठित हैं.... ठहरे हुए हैं.... वह सर्वज्ञ हो जाता है और पूर्ण ब्रह्म में प्रविष्ट हो जाता है। यही प्रतिबोध की स्थिति है मगर प्रतिबोध प्राप्त करने के लिए बोध आवश्यक होता है.... अविद्या का बोध होगा तभी विद्या की प्राप्ति हो सकेगी.... दुरित को पहचानकर उसे हटाऐंगे तभी भद्र का प्रवेश होगा इसीलिए केनोपनिषद् के ऋषि कहते हैं-

प्रतिबोध विदितं मतममृतत्वं हि विन्दते।
आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम्॥ (२-४)

अर्थात् प्रतिबोध से जाना गया ब्रह्म यथार्थ ज्ञान है। इस ब्रह्म-ज्ञान से मुमुक्षु पुरुष निश्चय से मृत्युरहित जीवन्मुक्त दशा को प्राप्त होता है। आत्मस्वरूप ज्ञान से योगबल अणिमादि सिद्धियों को प्राप्त होता है और ब्रह्मज्ञान से जन्ममरणादि दु:खरहित मोक्ष को प्राप्त होता है। महर्षि दयानन्द जी सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास में लिखते हैं-

'समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं मे भवेत। न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयन्तदन्तः करणेन गृह्यते॥

यह उपनिषद् का वचन है-जिस पुरुष के समाधियोग से अविद्यादि मल नष्ट हो गए हैं, आत्मस्थ होकर

परमात्मा में चित्त जिसने लगाया है उसको जो परमात्मा के योग का सुख होता है वह वाणी से कहा नहीं जा सकता क्योंकि उस आनन्द को जीवात्मा अपने अन्त:करण से ग्रहण करता है।

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदु:। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते॥ (ऋ० १-१६४-३९)

(**ऋचः**) वेद के समस्त मन्त्र (**अक्षरे**) अविनाशी प्रभु का वर्णन कर रहे हैं जो कि (**परमे**) सर्वोत्कृष्ट हैं। प्रकृति 'अपरा' है, जीव 'पर' है और प्रभु 'परम' हैं। ये ऋचाएँ उस प्रभु का वर्णन करती हैं कि (**व्योमन्**) (वि ओम् अन्) जिनके एक कन्धे पर प्रकृति है और दूसरे पर जीव। (वी अर्थात् प्रकृति 'गति-प्रजनन-कान्ति- असन व खादन का यही तो आश्रय है, अन् अर्थात् प्राणित होनेवाला जीव)। ये ऋचाएं उस प्रभु में स्थित हैं (**यस्मिन्**) जिसमें कि (**विश्वे देवाः**) सब देव (**अधिनिषेदुः**) अधीन होकर स्थित हो रहे हैं। (**य**) जो (**तत् न वेद**) उस प्रभु को नहीं जानता (**ऋचा**) वह ऋचाओं से (**किं करिष्यति**) क्या लाभ प्राप्त करेगा? (**ये**) जो (**इत्**) निश्चय से (**तत् विदुः**) उस व्यापक प्रभु को जानते हैं (**ते अमी**) वे ये लोग (**समासते**) इस संसार में सम्यक् आसीन होते हैं ,वे परस्पर प्रेम से उठते-बैठते हैं....।

महर्षि दयानन्द सरस्वतीजी ने कहा है कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है मगर ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में वे एक स्थान पर लिखते हैं कि वेद का मुख्य विषय ईश्वर है। इसलिए वास्तव में वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना उसी व्यक्ति का सार्थक है जो वेद में वर्णित ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त करता है.... गायत्री मन्त्र में उसी प्रभु को वरण करने की बात कही गई है। ब्राह्मण ग्रन्थों में जहाँ गायत्री महिमा की विशद् विवेचना की गई है, वहाँ एक बहुत ही सार्थक प्रसंग की चर्चा की गई है जब मैत्रेय आदि मौदग्ल्य ऋषि के पास गायत्री का रहस्य जानने के लिए जाते हैं। वहाँ मौदग्ल्यजी उन्हें 'सवितुर्वरेण्यम्' का यही रहस्य व भाव बताते हैं कि वेदों में जिस प्रभु का वर्णन किया गया है उसे वरण करना....वेद का एक मन्त्र है-

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽवृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छिन्ति ये के चात्महनो जनाः॥
(यजु० ४०-३)

जो आत्महन्ता लोग हैं वे अन्धकारपूर्ण योनियों को प्राप्त होते हैं.... भौतिक जगत् में जिसे कार्य-कारण सिन्द्धात कहते हैं, आध्यात्मिक क्षेत्र में उसी को कर्मसिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। महाराजा जनक की सभा में याज्ञवल्क्यजी ने उपस्थित समस्त विद्वानों से एक प्रश्न किया था-'जब वृक्ष को काट गिराते हैं तो वह अपने मूल से फिर उठ खड़ा होता है, परन्तु जब मृत्यु पुरूष को काट गिराती है तो वह किस मूल से फिर उठ खड़ा होता है? 'जब कोई विद्वान् उत्तर न दे सका तो उन्होंने स्वयं ही कहा था कि वह मूल आत्मा है.....। उस आत्म-तत्त्व को जानना चाहिए..... दर्शनों में कहा गया है- **यतोऽभ्युदयनिःश्रेयसः सः धर्मः॥** अर्थात् लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति करना मगर जो व्यक्ति निःश्रेयस प्राप्ति का प्रयास नहीं करके मात्र अभ्युदय में ही अपने जीवन को व्यतीत कर देता है, वह भी आत्महन्ता है और वह भी अन्धकारपूर्ण योनियों में ही जाता है....।

आत्मा की गति के सम्बन्ध में छान्दो०उप० में कहा गया है कि (८-६-५, ६) जब जीवात्मा शरीर से निकलता है-'तब साधारण पुरुष का आत्मा तो हृदय की रश्मि-रूप नाड़ियों से किसी एक में से निकल जाता है। ये नाड़ियाँ आँख, कान, नाक आदि सभी इन्द्रियों को गई हैं। जिस विषय में जीव जीवन भर रमा रहता हो, उसी विषय की नाड़ी से, उसी इन्द्रिय-द्वार से निकल जाता है। ब्रह्म का उपासक 'ओम्' का उच्चारण करता हुआ ऊपर को प्रयाण करता है। इधर इसका मनस्तत्त्व क्षीण होता है और वह 'आदित्य-लोक' को पंहुच जाता है, सौरी-दशा को प्राप्त हो जाता है। यह सौरी-दशा 'ब्रह्म-लोक' का द्वार है-ब्रह्म-ज्ञानी इस द्वार से निकलकर ब्रह्म-लोक में

पहुँच जाते हैं, दूसरे यहाँ रुक जाते हैं।'.... हृदय की एक सौ एक नाड़ियां हैं, उन में से एक मूर्धा की ओर निकलती है, उस नाड़ी से ऊपर की ओर चढ़ता हुआ ब्रह्मविद् अमृतत्त्व को प्राप्त करता है, दूसरी नाड़ियों से निकलने में भिन्न-भिन्न गति होती है।' प्रश्नोपनिषद् (तृतीय प्रश्न-६, ७) के अनुसार-'आत्मा का निवास हृदय में है। इस हृदय के साथ मुख्य-मुख्य एक सौ एक नाड़ियाँ हैं। इनमें से एक-एक से सौ-सौ शाखाएँ फूटी हैं। उन शाखाओं से भी एक-एक से बहत्तर-बहत्तर हजार प्रतिशाखाएँ फूटी हैं। हृदय से लेकर इस सम्पूर्ण 'रक्त-संचारिणी-संस्थान' में 'व्यान' विचरता है।

हृदय से एक नाड़ी ऊर्ध्व देश को अर्थात् मस्तिष्क को जाती है उसमें 'उदान' ऊपर या नीचे की तरफ जीवन-रहता है। पुण्य कार्य करने से हृदय में बैठे हुए आत्मा को 'उदान' 'पुण्य-लोक' में ले जाता है, पाप-कर्म करने से आत्मा को यह 'उदान' 'पाप-लोक' में ले जाता है, दोनों प्रकार के कर्म करने से आत्मा को उदान 'मनुष्य-लोक' में ले जाता है।' इस प्रकार यहाँ पर भी जीव की तीन ही प्रकार की गतियाँ बताई गई हैं.... उपनिषदों के अनुसार 'निष्कामी' अर्थात् ब्रह्म-ज्ञानी की गति बताई है कि-'वह अर्चि आदि स्थितियों से होता हुआ चन्द्र-लोक और फिर 'ब्रह्म-लोक' में पहुँचता है।' महर्षि ने भी उसकी यही गति बताई है-'पहले दिन सूर्य .... (से आरंभ करके अन्त में) बारहवें दिन सब दिव्य उत्तम गुण प्राप्त होते हैं।' दूसरे हैं 'सकाम-कर्मी' जिनकी गति के बारे में उपनिषद् कहता है कि-'वह मन्द-ज्योति की क्रमिक शृंखला से गुजरता हुआ चन्द्र-लोक तक और फिर वहाँ से वापस लौट आता है अर्थात् उसे सकाम कर्मों का फल भोगने के बाद पुनः जन्म-मरण के चक्र में आना होता है।'

महर्षि ने सकामी जीव की गति के बारे में कहा है-'जब यह जीव शरीर छोड़कर सब पृथिव्यादि पदार्थों में भ्रमण करता है....' तीसरे हैं 'जायस्व-म्रियस्व' जिनके बारे में उपनिषद् का कहना है कि-'जैसे सूण्डी तिनके के अन्त पर पहुँचकर, दूसरा कोई सहारा पकड़कर, अपने को खींच लेती है, वैसे आत्मा भी इस शरीर के अन्त पर पंहुँचकर, दूसरे मनुष्य व पशु आदि शरीर का सहारा लेकर अपने को खींच लेता है।' इस 'जायस्व-म्रियस्व' जीव की गति के बारे में महर्षि दयानन्द जी का कथन है कि वह-'....इधर-उधर जाता हुआ कर्मानुसार ईश्वर की व्यवस्था से जन्म पाता है....।'

एक गति है आवागमन के चक्कर में पड़े रहना, दूसरी है पितृलोक को प्राप्त होना और तीसरी है ब्रह्मलोक की प्राप्ति। जीवात्मा का परम लक्ष्य ब्रह्मलोक की प्राप्ति है अतः इसी के लिए प्रयास करना अपेक्षित है। साधना के द्वारा जब व्यक्ति के मल, विक्षेप व आवरण आदि हटेंगे.... पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकेषणा से उपरामता होगी, अपने आत्म-स्वरूप की पहचान होगी तो ईश्वरीय आनन्द प्राप्त होगा जो अवर्णनीय है.... गूंगे का गुड़ है .... हां उसके बारे में कई उपमाएं दी गई हैं कि उस स्थिति में अपने भीतर से ही आनन्द का स्रोत फूटता है .... जैसे लम्बे रोग से व्यक्ति को राहत पाकर अनुभूति होती है.... जैसे कर्ज या कारागार से मुक्ति मिलती है.. . जैसे निरन्तर अन्धकार में भटकते-भटकते प्रकाश मिल जाए.... महामना याज्ञवल्क्यजी ने मैत्रेयी से बहुत रहस्य की बात कही थी कि-**न वा अरे लोकानां कामाय लोकाः प्रिया.... कामाय सर्वं प्रियं भवति।।** कोई वस्तु इसलिए प्यारी नहीं होती कि वह वास्तव में प्रिय है बल्कि वह तभी तक प्रिय लगती है, जब तक वह हमारी आत्मा को तृप्त करती है.... इसलिए-**आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यातव्यो....** अरे मैत्रेयी! जो कि आत्मा, आत्मीय नहीं किन्तु आत्मा का आत्मा बना हुआ परमात्मा है (य आत्मनि निष्ठन्.... यस्यात्मा शरीरं-शत० १४-६-३०) वह द्रष्टव्य-साक्षात् करने योग्य है.... इन आत्मीयों में ही पड़े रहना नहीं चाहिए किन्तु ये आत्मीय तो उसके ही बनाए हैं, सो उस आत्मा के आत्मा बने हुए परमात्मा का साक्षात्कार करना चाहिए।

❑❑

पृष्ठ १३ का शेष

हैं। आपटे (Apte) ने सामर्थ्य का अर्थ Sameness of aim or object लिखा है, अर्थात् 'लक्ष्य अथवा उद्देश्य की समानता', अब आपने समझ लिया होगा कि ऋषि दयानन्द ने इस सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है वह कितना युक्तियुक्त और सार्थक है।

प्रश्न- वेद शास्त्र में जगत् के कारण को अनुमानतः कितने नामों से वर्णन किया गया है?

उत्तर- नाम तो बहुत हैं परन्तु मैं केवल २१ नाम लिखता हूँ-

स्वधा, तम, सलिल, अजा, पतत्री, पिशाङ्गिला, वृक्ष, सत, असत, तन्तु, प्रकृति, प्रधान, अव्यक्त, अव्याकृत, माया, शक्ति, सामर्थ्य, अप्रकेत्य, परमाणु, सम्पत्ति, सामग्री, इनमें से पहले १० नाम वेद के हैं और शेष अन्य शास्त्रों के हैं। प्रकृति और जीव के अनादि अनुत्पन्न होने में वेदों के प्रमाण-

द्वा सुपेर्णा सेयुजो सखाया समोनं वृ0क्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति॥

अर्थ- द्वा = दो (जीव और ईश्वर)

सुपर्ण = चेतनता और पालनादि गुणों से सदृश

सयुजा = व्याप्य व्यापक भाव से संयुक्त

सखाया = परस्पर मित्रता युक्त (सनातन) अनादि हैं और)

समानम् = वैसा ही

वृक्षम् = अनादि मूलरूप कारण और शाखा रूप कार्ययुक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर प्रलय में छिन्न-भिन्न हो जाता है।

परिषस्वजाते = उसका दोनों सब ओर से आश्रय करते हैं।

तयोः = उनमें से

अन्य = एक जीव

पिप्पलम् = परिपक्व फल या पाप-पुण्य से पैदा हुए सुख-दुःख रूप फल को।

स्वादु = स्वादुपन से।

अत्ति = खाता है।

अनश्नन् = उक्त भोग न करता हुआ।

अन्य = दूसरा परमेश्वर

अभिचाकशीति = सब ओर से देखता है।

जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न स्वरूप तीनों अनादि हैं। सत्यार्थप्रकाश व वेदभाष्य यजुर्वेद अ० १३ मन्त्र ३ का भाष्य करते हुए स्वामी जी महाराज 'असतः' का अर्थ यह करते हैं-

(असतः) अविद्यमनास्यादृश्याव्यक्तस्य कारणस्य। अविद्यमान, अदृश्य, अव्यक्त कारण का। ऋग्वेद मं० १.१.५ में 'सत्पति' का अर्थ करते हुए लिखते हैं- **(सत्पतिः) सतोडावनाशिनः कारणस्य विद्यमानस्य कार्यस्य सत्यपथ्य-कारिणां वा पालकः।**

अविनाशी कारण का, विद्यमान कार्य्य जगत् का या ठीक-ठीक पथ्य करने वाले जनों का पालन कर्त्ता। ऋग्वेद मं० १.११.१

(सत्पतिम्) या सतां नाशरहितानां प्रकृत्यादि-कारणद्रव्याणां पतिः स्वामी तमीश्वरम्।

जो नाशरहित प्रकृत्यादि कारण द्रव्यों का स्वामी है उस ईश्वर को।

यजुः अ० २३.५६ अजः = जन्म रहित प्रकृतिः।

यजुः अ० २३.५५ **पिशिङ्गला-सर्वेषामवयवानाम् निगलिकाः** विश्व के रूप को प्रलय समय में निगलने वाली यजुः १७.१९ **'पतत्रैः' पतन शीलै**

परमाण्वादिदिभिः क्रियाशील परमाणु आदि से।

यजुः अ० २३.५४ (अविः) रक्षिका प्रकृति; रक्षा करने वाली प्रकृति (अमर्त्यः जीव) अनादि होने से मृत्यु धर्म रहित जीव (मन) मरणधर्मी शरीर के साथ (सयोनिः) एक स्थानी होता हुआ (मृतस्य) मरण स्वभाव वाले जगत् के बीच (आचरति) आचरण करता है। ऋग्वेद १.१६४.३० शाश्वताभ्यः समाभ्यः यजुर्वेद ४०.८

सनातनीभ्योऽनादिस्वरूपाभ्यः स्वरूपेणेत्पत्ति विनाशरहिताभ्यः प्रजाभ्यः। सनातन अनादि स्वरूप से अपने-अपने स्वरूप से उत्पत्ति और विनाशरहित प्रजाओं (जीवों) के लिये।

जगत् के उपादान कारण के लिए प्रयुक्त हुए शब्दों के अर्थ-

प्रकृति = जो कार्यों का सबसे पहला कारण है
प्रधान = जो सबसे पहले कार्य जगत् का निर्माण करे।
अव्यक्त = अप्रकट, अप्रकाशित, सूक्ष्म।
अव्याकृत = अप्रकट, अप्रकाशित, सूक्ष्म, बे बना हुआ।
माया = विलक्षण शक्ति, Extra-ordinary power आपटे (Apte)
शक्ति = न्याय आदि में कहा हुआ, कारण में रहने हारा कार्य को उत्पन्न करने योग्य एक प्रकार का धर्म (पद्म०)
सामर्थ्य = समान अर्थ का जिसमें भाव हो। शक्ति
स्वधा = स्वकीयं अस्तित्त्वं धारयतीति स्वधा। जो अपने-आपको स्थित रख सके।
तम = अंधकार से युक्त अथवा अंधकार
अप्रकेत्य = न जानने योग्य
सलिल = गड्मगड्ड अथवा साम्यावस्था।
अजा = जन्म रहित प्रकृति। यजुर्वेद २३.५६
पतत्री = पतनशील। यजुर्वेद १६.१९
परमाणु = अत्यन्त छोटा सूक्ष्म
सम्पत्ति = दौलत, कोश
सामग्री = कारण समूह आपटे Apte
पिशंगिला = सर्वेषामवयवानां निगलिका। यजुर्वेद २३.५५
वृक्ष = जो वृश्च्यते छिद्यते तं कार्य कारणाख्यं वा। जो काटा और छेदा जा सके कार्य कारण नाम वाला।
सत् = त्रिकालाबाध्य
तन्तु = तनोति विस्तृणोतीति तन्तु। जो विस्तार करे।

प्रश्न- ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के 'वेद विषय विचार' में स्वामी जी महाराज ने अपनी संस्कृत के भाषार्थ में लिखा है कि 'परमाणु' उसको कहते हैं जिसका विभाग फिर कभी न हो सके परन्तु यह बात केवल एक देशी है क्योंकि उसका भी ज्ञान से विभाग हो सकता है, जिसकी परिधि और व्यास बन सकता है उसका भी टुकड़ा हो सकता है। यहाँ तक कि जब पर्यन्त वह एकरस न हो जाये तब पर्यन्त ज्ञान से निरन्तर कटता ही चला जायेगा।

उपर्युक्त लेख में पहले परमाणु को विभाग के अयोग्य बताकर पीछे उसको ज्ञान से विभाग के योग्य बताया है। इससे पहली बात पिछली बात से कटती हुई प्रतीत होती है।

उत्तर- यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि भाषार्थ यदि संस्कृत के विपरीत हो तो मानने योग्य नहीं है। क्योंकि भाषार्थ पण्डित लोगों का किया हुआ है जो बहुत अंश में निष्कपट नहीं थे। पुराने विचारों में ग्रस्त होने से स्वामी जी के विचारों से पूर्णरूपेण सहमत नहीं थे। कई स्थानों पर इनका यह कपट स्पष्ट प्रतीत होता है। श्री स्वामी जी महाराज ने अपने पत्रों में अनेक बार इस बात पर दुःख प्रकट किया है,

संस्कृत में केवल इतना लिखा है- **यद् द्रव्यं विभक्त विभागानार्इं भवति तस्य परमाणु संज्ञा चेति व्यवहारः तेहि विभक्ता अतीन्द्रिया संत आकाशे वर्तन्त एव।**

अर्थः- जो द्रव्य विभक्त होकर विभाग के योग्य न रहे, उसकी परमाणु संज्ञा होती है, यह व्यवहार है। वे ही विभक्त हुए अतीन्द्रिय होकर आकाश में रहते हैं। इससे आगे स्वामी जी ने अपनी संस्कृत में कुछ नहीं लिखा है। इसलिए जो विशेष लिखा गया है वह पण्डितों की अपनी समझ की बात है, स्वामी जी की नहीं।

प्रश्न- भाषार्थ में किये हुए उपर्युक्त विशेष लेख की श्री स्वामी जी के अभिप्राय से कुछ संगति लग सकती है क्या?

उत्तर- यदि उक्त लेख को संगति किया जाये तो उसका यह अभिप्राय लिया जा सकता है कि यदि कोई द्रव्य बाह्य क्रिया से विभक्त होते-होते नितान्त कटने के योग्य न रहे, तो पीछे ज्ञान से भी काटे जाने पर एक समय उसकी वह अवस्था माननी पड़ेगी कि वह ज्ञान से भी काटा न जा सके। क्योंकि कल्पना की भी कोई सीमा होती है। अन्ततः यह विचार करना पड़ेगा कि सावयव पदार्थ में अनन्त अवयव तो हो नहीं सकते। कहीं से तो इसके अवयवों के संयोग का आरम्भ हुआ ही होगा। और जहाँ से आरम्भ हुआ होगा वहीं पर वियोग का भी अन्त होगा। जहाँ वियोग का अन्त होगा वहाँ वे अत्यन्त सूक्ष्म टुकड़े रह जायेंगे जो निरवयव होंगे, जिनमें ज्ञान से भी परिधि और व्यास की कल्पना समाप्त होने से उनको एकरस ही मानना पड़ेगा। इस प्रकार की कल्पना से केवल ज्ञान की सूक्ष्म गति को दर्शाया है अन्यथा ज्ञान मात्र से किसी वस्तु के टुकड़े थोड़े ही होते हैं। वह तो जैसी थी तैसी ही रहती है।

चार्ल्स एनण्डेल Charles Annandale M.A. L.L.D. की Concise Dictionary में Atom (परमाणु) शब्द का निम्न अर्थ दिया है। Atom (L. Atomes, gr. Atomqs, anatom lit, What ia indivisible, a not and temno, to cut) An extremely minute particle of matter; a molecule, a particle of matter so minute, as to admit of no division either mechanical or chemical; hence anything extremely small.

अर्थ- Atom [एटम का लातीनी और ग्रीक भाषा में शब्दार्थ यह है- (क) नहीं और (Temno) टेमनो काटना अर्थात् जो विभाग के योग्य न हो] प्रकृति का एक अत्यन्त सूक्ष्म भाग जो मोलीक्यूल (molecule) कहलाता है। प्रकृति का इतना सूक्ष्म खण्ड कि जिसका किसी यंत्र से (Mechanical यन्त्र से) व रस तन्त्र विद्या (Chemically) रासायनिक विधि से) विभाग न हो सके, अर्थात् कोई वस्तु जो अत्यन्त छोटी हो। चार्लस एनण्डेल एम०ए०एल० एल०डी० कोन्साइज डिक्शनरी)।

पाश्चात्य विज्ञानवेत्ताओं ने प्रकृति के जिस खण्ड को अब तक एटम समझा हुआ था वह चाहे एटम सिद्ध न हुआ हो परन्तु इस सच्चाई को माने बिना नहीं रह सकते कि कोई खण्ड ऐसा अवश्य है या होना चाहिये जो विभाग के योग्य न हो।

शंका समाधान - विधर्मियों के आक्षेपों का उत्तर

प्रश्न- नित्य पदार्थों का अनेक होना, असम्भव है। क्योंकि नित्य पदार्थ प्रत्येक प्रकार से पूर्ण होना चाहिए। यदि नित्य पदार्थ अनेक हुए तो पूर्णता विभक्त हो जावेगी; उसके कई साक्षी हो जाएंगे और उसकी अनुपमता नष्ट हो जायेगी।

उत्तर- इसमें सन्देह नहीं कि नित्य पदार्थ पूर्ण होना चाहिये परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह एक ही हो, **पूर्णता दो प्रकार की होने से नित्य पदार्थों का अनेक होना असम्भव नहीं है।**

❑❑

पृष्ठ ९ का शेष
रचना पाते हैं तो हमें किसी के समझाने की आवश्यकता नहीं होती कि यह परमात्मा की कृति है, मनुष्य की नहीं। मनुष्य की क्लिष्टातिक्लिष्ट रचना भी छोटी से छोटी प्राकृतिक वस्तु के सामने पानी भरती है।

कपिल इस सूत्र में इसी ओर ध्यान आकर्षित कर रहे हैं। जब हम वेद पढ़ते हैं तो देखते हैं कि उनमें जैसे अर्थों की सीमा ही नहीं होती। प्रत्युत विभक्ति आदि व्यत्यय जो वेदों में पाए जाते हैं (और जो प्रारम्भिक छात्र को बहुत ही त्रस्त करते हैं!) वे इसलिए भी होते हैं - प्रधान विभक्ति से आप प्रधान अर्थ का ग्रहण कर लीजिए, फिर विभक्त्यादि-व्यत्ययों द्वारा अन्य अर्थ प्राप्त कर लीजिए। वेदों को समझना इतना कठिन इसीलिए है कि उनका अर्थ जानने के लिए बहुत कुछ (षडंग आदि) पहले ही जानना पड़ता है। तदुपरान्त मन्त्र के ऋषि, देवता, छन्द, स्वर, प्रकरण, आदि, अंश देखकर एक-एक मन्त्र का अर्थ-निर्धारण करना पड़ता है। एक-एक वेदांग पर अधिकार प्राप्त करने के लिए लोग अपना पूर्ण जीवन व्यतीत कर देते हैं। सभी अंशों को समझ लेना तो मनुष्य को ऋषि की श्रेणी में ला खड़ा करता है। साधारण मनुष्यों के लिए रचना तो क्या, समझना ही प्रायः असम्भव-सा ही होता है।

वैसे तो महर्षि दयानन्द और कपिल इस सोच में अकेले नहीं थे कि वेद अपौरुषेय हैं - उनके पीछे एक लम्बी परम्परा है। प्राचीन सभी विचारकों ने वेदों को अपौरुषेय माना है। प्रायः सभी दर्शनकारों ने इस भावना को अपने ग्रन्थों में व्यक्ति किया है। जिन्होंने वेदमन्त्रों को समझने की चेष्टा की है, उन्हें शनैः-शनैः इस तथ्य का भास होने लगता है, परन्तु जो केवल मन्त्रार्थ पढ़ते हैं उन्हें इस विषय में संशय अधिकतर बना रहता है। कभी-कभी जब हमें अपनी बुद्धि में कुछ स्पष्ट न हो रहा हो तो हमें ऋषियों की वाणी को शब्द प्रमाण मानकर स्वीकार कर लेना चाहिए। इसलिए जब वे कहें कि वेद अपौरुषेय हैं तो उसे हमें स्वीकार कर लेना चाहिए। जैसे-जैसे हम प्रयास करेंगे, यह तथ्य प्रकट होने लगेगा।

❑❑

'दयानन्द सन्देश' के स्वामित्व आदि का विवरण

1.	प्रकाशन का स्थान	:-	427 मन्दिर वाली गली, नया बांस, दिल्ली-110006
2.	प्रकाशन अवधि	:-	मासिक
3.	मुद्रक का नाम	:-	तिलक प्रिण्टिंग प्रेस, 2046 सीताराम बाजार, दिल्ली-110006
4.	प्रकाशक	:-	धर्मपाल आर्य
	क्या भारतीय है?	:-	हाँ
	पता	:-	12/61, पश्चिम पंजाबी बाग, दिल्ली-110026
6.	स्वामित्व	:-	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट 427 मन्दिर वाली गली, नया बांस, दिल्ली-110006

मैं (धर्मपाल आर्य) एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर लिखा समस्त विवरण सत्य है।

मार्च, 2020

धर्मपाल आर्य
(प्रकाशक/सम्पादक)

दलितोद्धार की आड़ में (४)

(राजेशार्य आट्टा पानीपत-१३२१२२, मो०: ०९९९१२९१३१८)

प्रिय पाठकवृन्द! इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि डॉ० अम्बेडकर ने दलितोद्धार के लिए राजनीति का सहारा लिया, जबकि आर्य समाज ने इसके लिए समाज का सहारा लिया था। उसी के प्रयत्नों से दलितोद्धार कांग्रेस का मुद्दा बन पाया था। हिन्दू महासभा, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ व वीर सावरकर ने भी आर्य समाज की पद्धति का अनुकरण कर दलितोद्धार के कार्य को धरातल पर उतारा था अर्थात् डॉ० अम्बेडकर के समय बहुत से मानवतावादी संगठन दलितोद्धार के कार्य में जुटे हुए थे, जबकि आर्य समाज तो अपने जन्म से ही इस कार्य में सक्रिय था। केवल दलितों के सहयोग से यह महान् कार्य सम्भव नहीं था। अत: डॉ० अम्बेडकर ने १९२४ में बहिष्कृत हितकारिणी सभा में कहा था कि अस्पृश्यों का उद्धार केवल अस्पृश्यों के बल पर नहीं होगा बल्कि सम्पूर्ण समाज के प्रयास से अस्पृश्यता के कलंक को मिटाया जा सकता है।

जबकि अम्बेडकरवादी दलित साहित्यकार अलगाववादी मानसिकता बनाकर चल रहे हैं। वे जय तो 'भीम' की बोल रहे हैं, पर उनकी विचारधारा के विपरीत आचरण कर रहे हैं। यदि इन्होंने बाबा साहब की केवल एक बात 'आर्य भारत के मूल निवासी थे' मानी होती, तो इन्हें महिषासुर, कंस, रावण, जरासन्ध आदि राक्षसों में अपने (दलितों के) पूर्वजों की कल्पना नहीं करनी पड़ती। हिन्दुओं से अलग दलित साहित्य लिखने के लिए अप्रामाणिक व काल्पनिक कहानियाँ न बनानी पड़तीं। ये लोग जिस मनुस्मृति को हिन्दुओं द्वारा दलितों पर अत्याचार करवाने वाली मानते हैं, आज के पढ़े-लिखे काल में भी लगभग ९८% हिन्दुओं ने उसके दर्शन भी नहीं किये हैं, पढ़ने वाले कितने होंगे, आप स्वयं सोच लीजिये। फिर भी हिन्दुओं को मनुवादी कहकर उनके प्रति घृणा करते-करते ये नेता लोग दलित-मुस्लिम भाई-भाई बनकर आपस में गठबन्धन कर बैठे। यहाँ भी ये डॉ० अम्बेडकर की चेतावनी को अनसुनी कर गये। १९४७ ई० में पाकिस्तान बनने के पश्चात् उधर के वंचित बन्धुओं से बाबा साहब ने कहा था-

"मैं पाकिस्तान में फँसे वंचित समाज को कहना चाहता हूँ कि उन्हें जो मिले, उसी मार्ग व साधन से उन्हें हिन्दुस्तान आ जाना चाहिए....। वंचित समाज में एक बुरी बात घर कर गई है। वह यह मानने लगा है कि हिन्दू समाज उसका तिरस्कार करता है, इस कारण मुसलमान मित्र है। यह आदत अत्यन्त घातक है। हिन्दुओं ने उन्हें कितना भी कष्ट दिया हो, तब भी अपना मन कलुषित नहीं करना चाहिए।"

बाबा साहब का यह भी कहना था- "हिन्दुओं में सामाजिक बुराइयाँ हैं। किन्तु एक अच्छी बात है कि उनमें उसे समझने वाले और उसे दूर करने में सक्रिय लोग भी हैं, जबकि मुसलमान यह मानते ही नहीं कि उनमें बुराइयाँ हैं और इसलिए उसे दूर करने का उपाय भी नहीं करते।"

बाबा साहब की चेतावनी की अवहेलना कर श्री जोगेन्द्रनाथ मण्डल (कलकत्ता व नोआखली में हिन्दुओं का कत्लेआम देखकर भी मुस्लिम लीग का समर्थन व सहयोग करेन वाले) स्वयं तो पाकिस्तान (पूर्वी बंगाल) में रह गये, अपने साथ ७० लाख अनुसूचित लोगों को भी वहीं रख लिया। जोगेन्द्रनाथ मण्डल

पाकिस्तान सरकार में कानून एवं श्रम मंत्री बने। पर कुछ ही समय बाद हिन्दुओं पर हुए मुस्लिम अत्याचार को देखकर उनका मोह भंग हो गया और उन्होंने अपने पद से इस्तीफा दे दिया। तत्कालीन प्रधानमंत्री लियाकल अली खान को ८ अक्टूबर १९५० को लिखे हुए पत्र में उन्होंने अपना दर्द रोते हुए लिखा था- "कलकत्ता हिंसा के बाद अक्टूबर १९४६ में नोआखली दंगे हुए। उनमें अनुसूचित जातियों सहित तमाम हिन्दुओं का कत्लेआम हुआ और सैकड़ों को इस्लाम में कन्वर्ट किया गया। हिन्दू महिलाओं से बलात्कार किए गए, उनका अपहरण किया गया।..... हिन्दुओं की दर्दनाक पीड़ा को देखकर मेरे दु:ख का पारावार न रहा। मगर तब भी मैं मुस्लिम लीग के साथ सहयोग की राह पर ही चलत रहा।.... भारत-पाकिस्तान उपमहाद्वीप के ३३ करोड़ हिन्दुओं ने मेरी तरफ पीठ कर ली थी और मुझे हिन्दुओं और हिन्दुत्त्व का दुश्मन बताया था, लेकिन मैं भी पाकिस्तान के लिए अपनी निष्ठा में इंच भर भी नहीं डिगा था।".... (पाकिस्तान बनने के बाद) "सिलहट जिले के हफीजगढ़ में निर्दोष हिन्दुओं, खासकर अनुसूचित जातियों पर पुलिस और सेना ने जो जुल्म किए, उनकी बाबत बता दूँ। मासूम पुरुषों और महिलाओं को यातनाएँ दी गई, कुछ महिलाओं का बलात्कार किया गया, पुलिस और स्थानीय मुसलमानों ने घर-जायदाद लूटी। इलाके में सेना की चौकी लगाई गई। सेना ने न केवल इन लोगों को यातनाएं दीं, हिन्दू घरों से जबरन सामान लूटा, बल्कि अपने शिविरों में सैनिकों की वासना तृप्त करने को हिन्दुओं को रात में अपने घर की महिलाओं को भेजने का दबाव डाला।..."

"शहर के सभी हिस्सों में हिन्दुओं के घरों, दुकानों में आगजनी, लूटमार तथा जहाँ मिले हिन्दुओं की हत्याएँ शुरू हो गई। मेरे पास मुसलमानों के भेजे सबूत हैं कि पुलिस के आला अधिकारियों की मौजूदगी में लूटमार की गई। पुलिस अधिकारियों के सामने हिन्दू सुनारों की दुकानें लूटी गई। उन्होंने लूटमार को रोकने की कोशिश तो की नहीं बल्कि लुटेरों को हिदायतें देकर उनकी इसमें मदद ही की.. ..मैंने जो खुद देखा और अनुभव किया उससे जो जाना वह हिलाकर रख देने वाला है। (लगभग दस हजार हिन्दुओं की बेरहमी से हत्या की गई) पूर्वी बंगाल में आज क्या हालात हैं? देश बंटने के बाद करीब ५० लाख हिन्दू पलायन कर चुके हैं।"... "पश्चिमी पाकिस्तान में अनुसूचित जाति के करीब एक लाख लोग थे। ध्यान रहे, उनमें से बड़ी तादाद में लोगों को इस्लाम में कन्वर्ट कर लिया गया था।"

जिनकी बात मानकर लाखों दलित पूर्वी पाकिस्तान में ही रह गये थे, उनकी दुर्गति व हत्या के दोषी, दलित-मुस्लिम एकता के समर्थक जोगेन्द्रनाथ भी पाकिस्तान छोड़कर भागे और भारत में शरण ली। दलितों को सम्मान दिलाने हेतु हिन्दुओं को छोड़ मुस्लिम लीग का समर्थन करने की भयंकर भूल का उन्हें जीवनभर पछतावा रहा। उपेक्षा और गुमनामी का जीवन बिताते हुए यहीं १९६८ में उनकी मृत्यु हो गई। राजनीति में दलितों के हितों का ठेका लेने वाली सुश्री मायावती ने सीएए कानून का विरोध कर दलितोद्धार किया या हिन्दुत्त्व का विरोध कर मुस्लिम वोट बैंक बचाया? हाथों में डॉ० अम्बेडकर के चित्र लेकर मुस्लिमों के साथ इस कानून के विरोध में आन्दोलन करने वाले अनपढ़ स्त्री-बच्चों को तो शायद यह नहीं पता कि इस कानून से भारत की नागरिकता पाने वाले अधिकतर हिन्दू दलित ही हैं। पर मायावती को तो सब पता है फिर भी वह दलित-मुस्लिम भाई-भाई का नारा लगाकर दलितों को आत्महत्या के मार्ग पर क्यों धकेल रही है? शरणार्थी दलितों के प्रति निर्ममता दिखाने वाली ये कैसी दलित नेता हैं? वास्तव में दलितोद्धार का सर्वाधिक कार्य स्वामी श्रद्धानन्द ने

किया, पर उनका नाम लेना भी दलित साहित्यकारों के लिए अपशकुन जैसा है। अतः लिख दिया- "डॉ० बी०आर० अम्बेडकर ने सर्वप्रथम इस 'दलित' शब्द का अपने लेखन में प्रयोग किया।"

समीक्षाः- दलितोद्धार का कार्य आर्य समाज ने तब आरम्भ कर दिया था, जब डॉ० अम्बेडकर अपनी माँ की गोद में खेल रहे थे। लाला मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) ने १८९३ ई० में ओड़ जाति के लोगों को आर्य बनाना शुरू कर दिया था। पंजाब में सामूहिक रूप से दलितोद्धार के कार्य की नींव पं० गंगाराम जी (मुजफ्फरगढ़) ने रखी। जम्मू क्षेत्र में मेघों के उद्धार के कारण महाशय रामचन्द्र जाति अभिमानी राजपूतों की लाठियों से शहीद हो गये। दलितोद्धार के कार्य से नाराज लोगों ने रोपड़ के पं० सोमनाथ का ऐसा बहिष्कार किया कि उन्हें जोहड़ का पानी पीना पड़ा। इससे बीमार होकर उनकी माँ ने दम तोड़ दिया। बाद में स्वामी श्रद्धानन्द ने दलितोद्धार का वह महान् कार्य किया कि साढ़े छह करोड़ दलितों को हिन्दू-मुस्लिमों में आधे-आधे बाँटने की घोषणा करने वाले कांग्रेस के मुस्लिम नेता (अध्यक्ष) देखते रह गये। यह दलित शब्द सर्वप्रथम स्वामी श्रद्धानन्द ने प्रयोग किया था। पर दलितों के ठेकेदार आर्य समाज के उन बलिदानी पुरुषों का नाम भी न लेकर कृतघ्नता की पराकाष्ठा कर रहे हैं। दलितों का कुआँ खुदवाने की अनुमति लेने के लिए जिस व्यक्ति ने रांघड़ मुसलमानों की लाठियाँ खाकर भी २१ दिन का आमरण उपवास किया हो और कुआँ खुदने पर दलित युवक के हाथ से उसका जल पीकर उपवास तोड़ा हो, क्या ऐसे भक्त फूलसिंह का बलिदान स्मरणीय नहीं है?

यह सत्य है कि डॉ० अम्बेडकर ने दलित शब्द का प्रयोग किया है पर यह भी सत्य है कि उनके द्वारा बनाये गये संविधान में दलित शब्द का प्रयोग नहीं है। दलित का अर्थ है पीड़ित, शोषित, दबा हुआ, खिन्न, उदास, टुकड़ा, खण्डित, रौंदा हुआ, जिसे अस्पृश्य समझा जाता हो। संविधान में अनुसूचित जाति शब्द का प्रयोग है, जिसके अन्तर्गत सैकड़ों जातियाँ रखी गई हैं। दलित तो किसी भी वर्ग, समाज, जाति में हो सकता है। आज दलित शब्द कुछ विशेष जातियों के लिए प्रयोग कर तथाकथित उच्च जातियों के दलितों के साथ अन्याय किया जा रहा है। यह भी अनजाने में नहीं अपितु जान बूझकर किया जा रहा है। 'विश्व धरातल पर दलित साहित्य' नाम की इस ९६ पृष्ठों की पुस्तक में कम से कम ५० बार मनुस्मृति के विधान के प्रति घृणा व्यक्त की गई है और आर्यों को शूद्रों पर अत्याचार करने वाले आक्रमणकारी प्रचारित करते हुए प्रत्येक पृष्ठ पर लिखा गया है, पर दुःख और आश्चर्य तो इस बात का है कि आज के दलित तो स्वयं को वैदिक काल के शूद्रों के वंशज मानते हैं पर ये जिनसे घृणा कर रहे हैं, उन आर्यों का वंशज मानने वाला कोई नहीं है। (आर्य समाज के थोड़े से लोगों को छोड़कर) फिर भी दलित नेताओं द्वारा तथाकथित सवर्ण हिन्दुओं के प्रति अलगाववाद का घृणात्मक प्रचार किया जा रहा है। उपरोक्त पुस्तक के लेखक ने लिखा है-

"आर्यों ने (दलितों के पूर्वजों की) सिन्धु घाटी के शिल्पकारों पर अचानक आक्रमण करके उनके वैभवशाली नगरों को तहस-नहस कर दिया, वहाँ के नागरिकों का सामूहिक नरसंहार किया।....मानव मुक्ति का यह संघर्ष आर्यों के साथ शुरू से ही जारी है भले ही इस संघर्ष पूर्ण आन्दोलन में हमारे पूर्वजों की कितनी ही पीढ़ियाँ सूली पर चढ़ गई, हवन कुण्डों की तेज आग में झोंक दी गई, राजभवनों की नींवों में दबा दी गई, जिन्दा दीवारों में चिन दी गई और अन्यायियों की नंगी तलवारों पर झूल गई पर उत्पीड़न व अन्याय के विरुद्ध मानव अधिकारों के लिए उनके स्वरों को वे नहीं दबा सकीं।... आज हमारे सामने

हमारे पूर्वजों की शौर्य गाथाओं का लिखा कोई ऐतिहासिक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।...." (पृष्ठ २९-३०)

समीक्षाः- लेखक ने ऐसा कम से कम दस बार लिखा है। इसकी समीक्षा पहले की जा चुकी है। दुर्जनतोषन्याय से मान लें कि आर्यों ने दलितों पर आक्रमण किया। जिन दलितों को लेखक ने सोने की चिड़िया देशवाले और ब्रह्माण्ड तक पहुँच वाले लिखा है (पृ० १६), फिर वे कुछ विदेशी आक्रमणकारियों के मुकाबले इतने निर्बल कैसे हो गये कि उन्हें अपना सब कुछ छोड़कर जंगल में भागना पड़ा या उन्हीं (आर्यों) की दासता स्वीकार करनी पड़ी? यहाँ तक कि वे अपना और अपने देश का नाम भी भूल गये। यदि उन्हें दस्यु, राक्षस, अनार्य, शूद्र आदि नाम आर्यों ने दिये थे तो उनके अपने नाम किस भाषा में थे और क्या थे?

यह तो ठीक है कि शूद्र सेवक या दास का काम करते थे पर विदेशियों जैसी (१९वीं शताब्दी तक भी) दास (गुलाम) प्रथा भारत में नहीं थी। यदि दास लेखक की मान्यता अनुसार राक्षस होते तो मन्थरा जैसी दासी रामायण में इतनी महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं निभा पाती, विदुर जैसा महाज्ञानी पुत्र उत्पन्न करने का किसी दासी को अवसर न मिलता, फिर अज्ञातवास में द्रौपदी को राजा विराट् की रानी सुदेष्णा की दासी बनने का अवसर न मिलता।

लेखक लिख तो ऐसे रहा है मानो आर्य-द्रविड़ युद्ध या संघर्ष को अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देख रहा हो पर साथ ही यह भी मानता है कि उनके पास उनके पूर्वजों (द्रविड़ों) की शौर्य गाथा का कोई लिखित इतिहास नहीं है। वन्ध्या के पुत्र के विवाह में शामिल होने वाले ऐसे ही व्यक्ति तो होते हैं। बिना प्रमाण के कल्पना पर कल्पना करते चले गये कि आर्यों ने दलितों (शूद्रों) को हवन कुण्ड में जलाकर मारा, राजभवन की नींवों में दबाकर मारा, मुँह में गर्म कील ठोक दी, कान फोड़ दिये, सूली पर चढ़ाकर मार दिये। लेखक एक तरफ तो लिखता है कि दलितों (अनार्यों) ने अपने उत्पीड़न के विरुद्ध रुदन, चीतकार किया होगा, अपने साथ अमानवीय व्यवहार पर साहित्य के नाम पर जरूर कुछ लिखा होगा, जो शोध का विषय है और उसकी खोज होनी चाहिए। ब्राह्मणों ने उसे नष्ट करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है।" (पृ० ३५)

जबकि इससे पूर्व पृ० ३२ पर लिखा है कि मूल निवासियों का आर्यों के साथ जमकर युद्ध हुआ। इसका वर्णन ऋग्वेद में दाशराज युद्ध के रूप में मिलता है। आर्यों से इस युद्ध में लड़ने वाले पिजावन, पैजवन, देवदास और सुदामादास राजा थे जिन्होंने अपने पराक्रम और शूरवीरता से आर्यों के छक्के छुड़ा दिये थे।..... आर्य और अनार्यों का यह संघर्ष सैकड़ों वर्षों तक चलता रहा। इसे ही देवासुर संग्राम कहा गया। वेदों में इस संघर्ष का वर्णन इस प्रकार किया गया है-(ऋग्वेद व सामवेद के सात मन्त्रों का अर्थ लिखा है।)

समीक्षाः- सोचिये, जब इस्लाम की क्रूरतापूर्ण आँधी में भी आर्यों ने अपने वेदों को वर्ण व मात्रा सहित सुरक्षित रख लिया, फिर तथाकथित द्रविड़ इतने नालायक थे क्या, जो अपनी भाषा में लिखे अपने शौर्य इतिहास का एक भी ग्रन्थ सुरक्षित नहीं रख पाये? यदि ब्राह्मणों ने उन्हें नष्ट कर दिया था तो फिर द्रविड़ों (दलितों) ने ब्राह्मणों (आर्यों) के ग्रन्थों से क्या प्रेम बढ़ाया? लेखक ने वेद में इतिहास मानने वालों द्वारा किया वेदमन्त्रों का अर्थ लिखा है जिनमें इन्द्र से दस्युओं के विनाश की प्रार्थना की गई है। दस्यु या राक्षस का अर्थ होता है जिससे अपना बचाव किया जाए अर्थात् जो विघ्न अथवा विघ्नकारी हैं, चाहे वे भाव हों, कर्म हों, मनुष्य हों, कीट-पतंग आदि

कोई हों, सभी राक्षस या दस्यु कहलाते हैं। अब कोई दस्यु का अर्थ केवल आज के दलितों के पूर्वज करे तो यह धूर्तता ही कही जा सकती है। अगले पृष्ठों में भी लेखक ने अच्छे-अच्छे शब्दों के साथ बलात्कार किया है।

गाँधी जी में राजनैतिक महात्त्वाकांक्षा तो थी, पर दलितों के प्रति उनके मन में जो उदारता थी, उसे नकारा नहीं जा सकता। उन्होंने दलितों को 'हरिजन' नाम किसी दुर्भावना से नहीं दिया था। हरिजन शब्द का सीधा सा अर्थ है हरि (परमात्मा) के जन (मनुष्य)। पर लेखक ने उसे असंवैधानिक बताते हुए कहा है कि गुजरात के सन्त कवि नरसीमेहता ने अनाथ बच्चों के प्रति करुणा के लिए सबसे पहले हरिजन शब्द का इस्तेमाल किया था। यदि नरसी मेहता ने अनाथ बच्चें के प्रति करुणा भाव से यह शब्द प्रयोग किया था तो इसमें बुरा क्या है? अब यदि गाँधी जी ने भी दलित लोगों के लिए उसी शब्द का प्रयोग किया है तो इसका अर्थ वेश्याओं के अनाथ बच्चे थोड़े ही हो जाएगा, जो दलित लेखक उसे शूद्रों को अपमानित करने वाला मानने लगे।

इसी तरह लेखक ने आर्य समाज द्वारा प्रचलित महाशय शब्दों को भी अनुचित बताते हुए लिखा है- "महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना की। इसने मुसलमान या ईसाई बने अछूतों का शुद्धिकरण कर जनेऊ पहना 'आर्य' बनाकर पुनः हिन्दू धर्म में शामिल कराया पर आर्य समाज में इन शुद्धि किये अछूतों को 'महाशय' जी कहकर अलग पहचान बनाकर रखी जिससे कि सर्वण हिन्दू उनकी पहचान के विषय में गफलत में न रहें।..." (पृ० ८३)

समीक्षाः- लेखक के इन शब्दों में कृतघ्नता भरी हुई है। यह तो बार-बार लिखा कि आर्यों ने शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं दिया पर यह एक बार भी नहीं लिखा कि आर्यों (आर्य समाजियों) ने शूद्रों को वेद पढ़ा-पढ़ाकर पण्डित ही नहीं बनाया, अपितु उन्हें संन्यासी भी बनने का अधिकार देकर समस्त समाज का पूज्य भी बनाया। उल्टे यह आरोप लगा दिया के आर्य समाजियों ने मुस्लिम व ईसाई बने दलितों को हिन्दू बनाकर उन्हें 'महाशय' नाम दे दिया, ताकि उनकी अलग पहचान रहे। जबकि वास्तविकता यह है कि महाशय शब्द संस्कृत भाषा का शब्द है- जिसका आशय महान् है। आशय का अर्थ है- अभिप्राय, मतलब, मन का भाव, तात्पर्य। आर्य समाज के विद्वान्, उपदेशक, भजनोपदेश आदि के लिए यह नाम आदर-सूचक के रूप में कभी से प्रयोग किया जा रहा है। लेखक झूठ लिख रहा है कि यह नाम शुद्ध किये गये दलितों की अलग पहचान के लिए था। ऐसा करके लेखक अनजान लोगों को अपने बाड़े में घेरने के लिए भ्रमित कर रहा है।

यदि ऐसा होता तो संसार भर में प्रसिद्ध मसाले के व्यापारी महाशय धर्मपाल (एम.डी.एच.) क्या यह शब्द प्रयोग करते? आर्य समाज के महान् नेता व पत्रकार महाशय कृष्ण, रंगीला रसूल पुस्तक छपवाकर मुस्लिम अत्याचार के कारण शहीद होने वाले महाशय राजपाल, दलितोद्धार के लिए बलिदान देने वाले महाशय रामचन्द्र, महाशय खुशहाल चन्द (महात्मा आनन्द स्वामी), आर्य समाज के पहले बलिदानी महाशय चिरंजीलाल आदि हजारों वैदिक विद्वान् अपने नाम के साथ महाशय शब्द का प्रयोग करते थे व अब भी करते हैं। आर्य समाज के सभी भजनोपदेशकों को प्रायः महाशय जी कहते हैं। इसी तरह सामान्य आर्य समाजी को भी महाशय कह देते हैं। यदि ईसाई बनकर पुनः आर्य बने दलित ने भी यह शब्द प्रयोग किया हो तो इसमें अलगाव तो लेखक की मानसिकता में भरा हुआ है कि उसे हर जगह वही दिखाई देता है।

वेदों में सृष्टि का नित्य इतिहास है, जीवन उत्थान का उपदेश प्रतीकों के माध्यम से किया गया है। इसमें व्यक्तियों का अनित्य इतिहास नहीं है। ब्राह्मणों और उपनिषदों में जिस देवासुर संग्राम का वर्णन है, वह अच्छे-बुरे विचारों, व्यक्तियों के संघर्ष को दर्शाता है। यह देवासुर संग्राम अब भी प्रत्येक देश में व प्रत्येक व्यक्ति के मन में चलता रहता है। मनुष्य, समाज व राष्ट्र का पतन करने वाले, उन्नति में बाधा डालने वाले विचारों व व्यक्तियों का विनाश करने के लिए परमात्मा व राजा से प्रार्थना करना क्या बुरा है? लेखक द्वारा देवासुर संग्राम को आर्य-दलित संग्राम सिद्ध करने के लिए दिये गए मन्त्रों में कहीं भी दलित या शूद्र शब्द नहीं है। जैसे ऋग्वेद ६-१८-५ में 'बल' नामक दैत्य को मारना लिखा है। वास्तव में मन्त्र में 'वल' (ज्ञान पर आवरण भूत वासना) है, दैत्य नहीं।

२. (सामवेद २-५-८) जैसा लेखक ने लिखा है- 'हे इन्द्र! वैर करने वाली सब सेनाओं को छिन्न-भिन्न करो, विनाशकारी युद्धों को समाप्त करो और फिर इनसे सग्रहणीय धन को हमारे पास ले आओ।' बताइये, इसमें शूद्र, दलित या द्रविड़ कहाँ से आ गये?

३. (ऋग्वेद ६-२०-१०) में शम्बर दस्यु लिखा है, जबकि मन्त्र में यह शब्द ही नहीं है। इसी तरह (ऋग्वेद ५-२१-१०) में अनास-छोटी नाक वाले दस्यु लिखा है। यदि लेखक दस्यु का अर्थ शूद्र या दलित मानता है तो क्या दलितों की नाक छोटी होती है? इसी तरह लेखक ने ऋग्वेद का मन्त्र **'ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्...'** लिखकर कहा कि शूद्र को पैर से उत्पन्न बताकर शूद्र को सबसे नीचे की श्रेणी में डाल दिया गया। जबकि पृ० १५ पर लिखा है कि ऋग्वेदिककालीन समाज पहले इन्हीं (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) तीन वर्णों में बंटा था, इसलिए जैसे उसके काम (पेशे) थे, वैसा ही उन्हें नाम दिया गया था, चतुर्थ वर्ण को लगता है बहुत बाद में जोड़ा गया। इस वर्ण में शेष उन लोगों को रखा गया जो आर्यों से युद्ध में पराजित हुए या जिन्हें मनुस्मृति विधान को तोड़ने के अपराध में उपरोक्त तीन वर्णों से बहिष्कृत कर दिया गया था, इसीलिए उन्हें निन्दा सूचक, घृणास्पद, अपमानित 'शूद्र' नाम दिया गया।

समीक्षाः- लगता है लेखक ने वेद नहीं पढ़े, केवल किसी का कथन उठाकर रख दिया। यदि ऋग्वैदिक काल में शूद्र वर्ण नहीं था तो उसे नीचे (सबसे) की श्रेणी में डालने का आरोप क्यों लगाया? यदि शूद्र शब्द निन्दा सूचक था तो (अथर्ववेद १९-६२-१) के मन्त्र **'प्रियं मा कृणु देवेषु.....'** व (यजुर्वेद १८-४८) के मन्त्र **'रूचं नो धेहि ब्राह्मणेषु. .....'** आदि में अन्यों के साथ शूद्र का भी प्रिय बनने की कामना क्यों की गई है? न तो सबके पास वेद हैं और न सब वेद का अर्थ कर सकते हैं। इसलिए लेखक ने कहीं के अर्थ उठाकर अपनी कल्पना से उसे शूद्र (दलित) विरोधी बना दिया। अनजान लोगों को आर्यों (हिन्दुओं) का दुश्मन बनाने के लिए षड्यन्त्र रचा जा रहा है। गुणवाचक शब्द 'आर्य' को विशेष जाति बनाकर अंग्रेजों ने जो षड्यन्त्र रचा था, कम्युनिस्टों की सहायता से तथाकथित अम्बेडकरवादी लोग उसे सफल करने में कमर कसे हुए हैं। इसी से भ्रमित हुए किसी व्यक्ति ने मनु को गाली देते हुए कहा- मनु ने हम पर अत्याचार करने का आदेश देते हुए लिखा है-

'ढोल गंवार पशु शूद्र नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी।'

मैंने कहा- 'भले आदमी, मनु ने तो संस्कृत में लिखा था, यह तो हिंदी के कवि की चौपाई बोल रहे हो। कभी मनुस्मृति पढ़ भी लिया करो। यह सुनकर वह लज्जित हो चुप हो गया।

❑❑

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/०३/२०२०
भार- ४० ग्राम

मार्च 2020

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2018-20
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१८-२०
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2018-20

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
● उपहार संस्करण	मुद्रित मूल्य 1100 रु.	प्रचारार्थ 750 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30, 8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650522778
E-mail : aspt.india@gmail.com

दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.....
ग्राम.....
डा0.....
जिला.....

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।